UNIVERSAL LIBRARY

OU_180463

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 M69N Accession No. P. G. H3

Author मोहन राकेश

Title नये बादल 1957

This book should be returned on or before the date last marked

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी-ग्रन्थाङ्क ५०

नये बादल

श्री मोहन राकेश

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

प्रकाशक—
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ,
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

PG

प्रथम संस्करण
१९५७ ई०
मूल्य ढाई रुपये

Checked 1969

मुद्रक—
विद्यामन्दिर प्रेस (प्राइवेट)
लिमिटेड
मानमन्दिर, वाराणसी

प्रेमचन्द्र की आत्मा

नये बादल	९
उसकी रोटी	२०
सौदा	३७
मलबेका मालिक	४४
मन्दी	५८
फटा हुआ जूता	६९
अपरिचित	८७
हवामुर्ग़	१०३
मरुस्थल	१११
भूखे	१०२
शिकार	१३२
उलझने धागे	१४०
छोटी-सी बात	१५१
सीमाएँ	१५८
ऊर्मिल जीवन	१७०
एक पंखयुक्त ट्रेजेडी	१७६

मैं यह समझता हूँ कि कहानियाँ पढ़नेवालेसे साथ एक भूमिका पढ़नेकी आशा करना ज़्यादती है। मगर एक ऐसा वर्ग भी है जो कहानियाँ पढ़नेसे पहले लेखकका दृष्टिकोण जान लेना चाहता है। उसी वर्गको दृष्टिमें रखते हुए मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ।

आज कहानीके सम्बन्धमें एक नयी दृष्टि पनप रही है, जिससे कहानीके प्रभावका स्वरूप भी बदल गया है और जिन स्रोतोंसे हम कहानी लिखनेकी प्रेरणा लेते हैं, उनका क्षेत्र भी काफ़ी विस्तृत हो गया है। हमारे चारों ओर जीवनका हर अणु किन्हीं प्रभावोंसे चालित हो रहा है। हम उन प्रभावोंको पहचान सकें तो हर अणुकी अपनी एक कहानी है। जिस राह पर से दो चरण गुज़र जाते हैं, उस राहके वक्ष पर उन पग-चिह्नोंसे एक कहानी लिखी जाती है। हर जीवित इन्सानके चेहरे पर एक कहानी लिखी रहती है, जो उसके चेहरेकी झुर्रियोंमें, उसकी पलकोंके निमेषोंमें और उसके माथेकी सलवटोंमें पढ़ी जा सकती है। मेरे दरवाज़े पर जो चिक लगी है, वह उन हाथोंकी कहानी है, जो धूपमें बैठकर उसे रँगते रहे हैं। मेरे फ़र्श पर बिछी हुई दरी शायद एक प्रणयकी कहानी है, जो धागोंको आपसमें उलझाते हुए दो हृदयोंमें अंकुरित हो उठा था। इस समय एक व्यक्ति बाहर धूपमें रद्दी ख़रीदनेके लिए सड़कोंके चक्कर काट रहा है। इस व्यक्तिके जीवनमें सन्ध्या और रात भी आती है, जब यह कुछ निजी लोगोंके छोटेसे दायरेमें बैठकर खिलखिलाकर हँसता है, या माथे पर हाथ रखे हुए लंबी साँस लेता है। इसकी चारपाई पर एक मैला खेस बिछा है, इसके लड़केकी आँख फूल आयी है, इसके रसोईघरकी दीवार धुएँसे काली हो गयी है, इसकी पत्नीके चेहरे पर फिर भी एक करुण मुसकराहट है और वह इसके हाथमें इसकी बहनका पत्र दे देती है कि उसके पतिने फिर उसे बुरी तरह पीटा

है और वह घर छोड़कर उनके पास आ रहना चाहती है—यह एक व्यक्ति की ही नहीं, उसके पूरे समयकी भी कहानी है। कहानीका प्रत्यक्ष कैन्वस बहुत छोटा और साधारण हो सकता है, पर जिस परोक्षकी ओर उसका संकेत है, वह छोटा और साधारण नहीं है।

पिछले कुछ वर्षोंमें हम सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवनके जिस संक्रांति-कालमेंसे गुज़रे हैं, उसकी नाना परिस्थितियाँ हमारी पीढ़ीकी कलाके विकासमें सहायक भी हुई हैं और बाधक भी। सहायक इसलिए कि निरन्तर बदलते हुए जीवनने इस पीढ़ीके लेखककी चेतना पर बार-बार चोट की है और उसे अपने वातावरणके प्रति बहुत सचेत बना दिया है, और बाधक इसलिए कि हिन्दीको प्राप्त हुई नयी मान्यताके कारण रचनाकी माँग बढ़ जानेसे लेखकोंके एक वर्गमें व्यवसाय-बुद्धि ज़ोर पकड़ गयी और रचनाके आन्तरिक मूल्यकी अपेक्षा उसकी द्रव्यार्जन शक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण हो उठी। परिणामतः जहाँ इस पीढ़ीके लेखकोंके एक वर्गने बहुत ईमानदारीसे साहित्यिक मूल्योंके विकासका प्रयत्न किया, वहाँ दूसरे वर्गने केवल लिखनेके लिए लिखा और सामान्य पाठकके लिए यह विवेक करना लगभग असम्भव कर दिया कि इन दोनों वर्गोंकी विभाजक रेखा कहाँसे आरम्भ होती है। जिन लेखकोंने कहानीके स्वरूपका वास्तवमें परिमार्जन और परिष्कार किया है और उसे जीवनकी भूमिके अधिक निकट ला दिया है, वे आज भी कहानीके लिए नये-नये धरातल खोज रहे हैं। यथार्थकी विविधता और व्यापकताको कहानीमें अंकित करनेके बहुमुख प्रयोग चल रहे हैं। सतहसे देखा जाय तो भले ही आजका जीवन शिथिल और गतिहीन प्रतीत हो, पर बारीक निगाहसे देखने पर उसमें इतनी हलचल देखी जा सकती है, जितनी पहले कभी नहीं रही। जिस कालमें परिस्थितियाँ हर तीन चार सालमें जीवनको एक झटका दे जाती हों और एक साधारण सामाजिक किसी निश्चित सूत्रको पकड़ कर अपना संतुलन बनाये रखनेमें असमर्थ हो गया हो, जब कि व्यक्ति की योग्यता और जीवनमें उसकी उपलब्धिका सम्बन्ध लगभग टूट गया हो,

जब कि हर एक की भविष्यकी खोज अंधी गलीमें हाथ मारनेकी तरह हो, उस समयको छोड़ कर एक लेखकके अध्ययन और चित्रणके लिए उपयुक्त और कौन-सा समय हो सकता है ? वास्तवमें जीवनकी संकुलता आजके लेखकके लिए एक चुनौती है । वह इस चुनौतीको स्वीकार करे और जीवन की पंकिल गहराईमें डुबकी लगानेका साहस करे तो वह रोम्याँ रोलाँके 'माकट प्लेस' जैसी रचना प्रस्तुत कर सकता है, बल्कि उससे कहीं अधिक बारीक रेखाएँ उघाड़ सकता है, क्योंकि बीते हुए कलकी उपलब्धियाँ आजके लेखकके लिए आदर्श नहीं, आरम्भका संकेत हैं । वहाँसे उसकी गतिका श्रीगणेश होता है ।

हमें यह स्वीकार करना होगा कि हमारी पीढ़ीने यथार्थके अपेक्षाकृत ठहरे हुए अर्थात् वैयक्तिक और पारिवारिक रूपको अपनी रचनाओंमें अधिक स्थान दिया है । निरन्तर कुलबुलाते और संघर्ष करते हुए सामाजिक पार्श्व का एक व्यापक भाग अक्रूरता रहा है, जिस की पहचान और पकड़ हमारे लेखकीय दायित्वका अंग है ।

आज कुछ लोग कहानीका सम्बन्ध एक विशेष तरहके शिल्प या वस्तुके साथ जोड़कर उसका मूल्यांकन करना चाहते हैं । इसे बहुत स्वस्थ और अधिकारी दृष्टि नहीं कहा जा सकता । कहानीकी उत्कृष्टताका यह प्रमाण क्योंकर है कि कहानी इस वर्गको लेकर लिखी गयी है या उस वर्गको, और कि उसका सम्बन्ध गाँवके जीवनसे है या क़स्बेके या नगरके ? क्या अनिवार्यतः इस दृष्टिका यह अर्थ नहीं कि हम जीवनके विकासशील रूपकी वास्तविकताको स्वीकार करना नहीं चाहते ? जीवन जड़ नहीं है तो उसके किसी बँधे हुए रूपको ही आदर्श मान लेना क्या प्रगतिमें अविश्वासका द्योतक नहीं ? इस परम्परावादको कहाँ तक सार्थक कहा जा सकता है ? हमारी रचनाका क्षेत्र निःसीम है और रचनाकी वास्तविक सिद्धि उसके प्रभावकी व्यापकतामें है । इसके लिए इतना ही आवश्यक है कि लेखकका दृष्टिकोण स्पष्ट हो और उसकी रचना उसके और पाठकके बीच एक

घनिष्ठताकी स्थापना कर सके। इसके लिए अभिव्यक्तिमें जिस स्वाभाविकताकी आवश्यकता है वह जीवनकी सहज अनुभूतियोंसे जन्म लेती है और वह स्वतः ही रचनाको सहज संवेद्य बना देती है। ये अनुभूतियाँ हमें जीवनके हर पक्ष और हर पहलूसे प्राप्त हो सकती हैं।

× × ×

अब कुछ अपनी बात। 'इन्सानके खंडहर' के बाद यह मेरा दूसरा कहानी-संग्रह है। कई कारणोंसे शायद 'इन्सानके खंडहर' का पुनर्मुद्रणन हो सके; परन्तु उस संग्रहकी कहानियाँ पाठकोंको बादके संग्रहोंमें मिल जायँगी। उस संग्रहके सम्बन्धमें मुझे जो पाठकोंकी सम्मतियाँ प्राप्त हुई थीं, उनसे निश्चित रूपसे मुझे अपनेको समझनेमें सहायता मिली है। इसके लिए मैं आभारका अनुभव करता हूँ। प्रस्तुत संग्रहके लिए मैंने अपनी अब तककी कहानियोंमेंसे सोलह कहानियाँ चुनी हैं। कुछ और कहानियाँ इसके बाद ही प्रकाशित होनेवाले दूसरे संग्रहमें जा रही है।

मॉडल टाउन, जालन्धर
१ जनवरी, १९५७

मोहन राकेश

नये बादल

उस रात तत्ता पानीकी धर्मशालामें ख़ास हलचल दिखायी दे रही थी। धर्मशालाका चौकीदार हाथमें लालटेन लिये व्यस्ततापूर्वक नीचे से ऊपर और ऊपरसे नीचे आ जा रहा था। धर्मशालामें कुल सोलह कमरे थे जिनमेंसे ग्यारह कमरे शाम होनेसे पहले ही भर गये थे। शेष कमरोंमेंसे दो कमरोंको उसने दोहरा ताला लगा रखा था क्योंकि कभी कोई मालिकका परवाना लेकर आ पहुँचता तो उसे जगह देना आवश्यक हो जाता था। इस तरह उसके पास कुल तीन कमरे ख़ाली थे और जगह चाहने वाले लगभग बारह-चौदह व्यक्ति उसके आगे-पीछे घूम रहे थे। इतने लोगोंका साथ होना ही उसके लिए मुसीबत थी। लोग एक-एक करके आते तो वह उनसे मौकेके मुताबिक चार-चार आठ-आठ आने लेकर उन्हें कमरे खोल देता। मगर इतने लोगोंके साथ होनेसे वह किसीसे भी पैसेकी बात नहीं कर सकता था। बिना पैसे लिये किन्ही तीन लोगोंको कमरे दे देना भी संभव नहीं था क्योंकि इससे और लोग शिकायत करते कि वह पक्षपात कर रहा है। वह चाबियाँ ढूँढ़नेके बहाने कभी इधरसे उधर और कभी ऊपरसे नीचे आ जा रहा था कि किसी तरह दो एक लोगोंसे अकेलेमें बात करनेका मौक़ा लग जाय तो वह उनसे पैसे लेकर पक्षपातके दोषसे बच जाय। पैसे लेकर तो वह ईमानदारीके साथ कह सकता था कि वे लोग औरोंसे पहले उसके पास आये हैं, इसलिए कमरों पर पहला हक़ उन्हींका है।

उस रात इतने लोगोंके एक साथ आ जानेका ख़ास कारण था। वैसे तो हर अमावसको बहुतसे यात्री शिमला और हिमाचल प्रदेशके विभिन्न भागोंसे वहाँ गंधकके चश्मेमें नहानेके लिए आया करते थे, पर उनमेंसे आठ दस ही रातको धर्मशालामें ठहरते थे। ज़्यादातर लोग सन्ध्यासे पहले ही

वापस चले जाते थे। परन्तु उस दिन सोमवती अमावस होनेके कारण एक तो अधिक संख्यामें लोग बाहरसे आये थे, और दूसरे बादल घिरे रहनेके कारण वर्षाके डरसे बहुत कम लोग लौट कर गये थे।

सम्भव था कि यह अनिश्चयकी स्थिति देर तक बनी रहती, परन्तु वर्षा की बड़ी-बड़ी बूँदोंने सहसा समस्याको सुलझा दिया। समस्याके इस तरह समाधानकी न चौकीदारने कल्पना की थी और न स्वयं उन लोगोंने जो बूँदें पड़नी आरम्भ होते ही अपना-अपना सामान उठा कर उन कमरोंमें घुस गये जिनमें दूसरे लोग पहलेसे ठहरे हुए थे। चौकीदारने रोकनेकी चेष्टा की, अन्दर वालोंने विरोध किया, दो-एक जगह गाली-गलौच और हाथापाई भी हुई, पर क्योंकि यह क़दम सामूहिक रूपसे उठाया गया था और हरएक के सामने दूसरोंका दृष्टान्त मौजूद था, इसलिए जो एक बार जिस कमरेमें पहुँच गया वह फिर वहाँसे बाहर नहीं निकला। इस तरह कुछ कमरोंमें तो तीन-तीन चार-चार नये आदमी पहुँच गये और कुछ कमरे बिल्कुल ही बचे रह गये। एक कमरेका अधिकारी, जिसके पास चार अतिथियोंने आश्रय ले लिया था, बाहर निकल कर चौकीदारको धमकाने और उससे अपनी अठन्नी वापस माँगने लगा तो चौकीदारने घोषणा कर दी कि उसे चाबियोंका गुच्छा मिल गया है और उसने सभी बंद कमरे खोल दिये। कमरे खुलनेकी सूचना पाकर भी बलात् कमरोंमें घुसे हुए लोग अपनी अपनी जगहसे नहीं हिले। अलबत्ता जिन्होंने चौकीदारको पैसे देकर कमरे लिये थे, उनमेंसे कई व्यक्ति एक-एक स्वतंत्र कमरेपर अधिकार करनेके इरादेसे बिस्तर लपेट कर बाहर निकल आये, और इस तरह पाँच कमरोंके लिए सात आठ अधिकारी बाहर पहुँच गये। उनमें फिर गाली-गलौच और हाथापाई हुई और दो एकने उसी तरह दूसरों-द्वारा अधिकृत कमरोंके आधे आधे भाग पर कब्ज़ा जमा लिया जैसे कुछ देर पहले बाहरके लोगोंने उनके कमरोंमें आकर किया था। जो एक सज्जन भद्रतापूर्वक लौट आये, उन्होंने देखा कि उनकी सुरक्षित जगह पर तब तक नवागन्तुकोंने बिस्तर बिछा

लिये हैं, जो उतनी सी देरमें सो भी गये हैं, और उनके लिए दहलीज़के पास जगह छोड़ दी गयी है जहाँ वर्षाकी हल्की-हल्की फुहार आ रही है।

खैर, थोड़ी देरमें हंगामा शान्त हो गया। रातकी निःस्तब्धतामें अब सतलुजके बहनेका शब्द सुनायी दे रहा था या वर्षाकी बूँदोंका शब्द। बीच-बीचमें दूरसे खच्चरोंकी घंटियोंकी आवाज़ सुनायी देने लगती थी जो क्रमशः पास आती जाती थी। फिर लकड़ीके पुल पर खच्चरोंके चलनेका शब्द सुनायी देता था। उसके बाद घंटियोंकी आवाज़ रुक जाती थी। दरियाके इस पार खच्चर वालोंके डेरे थे।

धर्मशालाके चार नंबरके कमरेमें चबूतरे पर एक मद्धम-सा दिया जल रहा था। दियेके पास चबूतरे पर ही एक अधेड़ उम्रका व्यक्ति लेटा था जिसने चौकीदारको अठन्नी देकर उससे वह कमरा लिया था। चौकीदारने अठन्नीके बदले उसे चौधरीका रुतबा दे दिया था, और वहाँ शामसे उसका वही नाम चल रहा था। कमरेमें दिया रखनेके लिए उसने चौकीदारको अलगसे एक इकन्नी दी थी, पर उसमेंसे चौकीदारने तेल पर पच्चीस फ़ीसदी से अधिक खर्च नहीं किया था, इसलिए दियेकी लौ अब बुझनेको हो रही थी।

जिस समय बाहरसे तीन व्यक्ति उसके कमरेमें घुस आये, उस समय चौधरी दिया बुझा कर सोने जा रहा था। तीन व्यक्तियोंको अनधिकार अपने कमरेमें प्रवेश करते देख पहले तो वह कुछ अव्यवस्थित हुआ; फिर उसने साहस बटोर कर उन्हें बतलाया कि वह उसका कमरा है, वे लोग भूलसे वहाँ आ गये है। इसपर जब एक नवयुवकने स्थिति स्पष्ट की कि बाहर वर्षा होने लगी है इसलिए वे भीगनेके डरसे उसके कमरेमें शरण ले रहे हैं तो वह कुछ क्षण असन्तोषके भावसे उनकी ओर देखता रहा। फिर वह चौकीदारको आवाज़ देनेके लिए दरवाज़े तक गया। वहाँसे उसने आसपासके कमरोंसे आती हुई झगड़ेकी आवाज़ें सुनीं और वस्तुस्थितिका ठीक परिचय पाकर अपने स्थान पर लौट आया। उसका क्रोध खीझमें बदल गया। पहले उसने निश्चय किया कि उस घटनाकी ओरसे ध्यान

हटाकर दिया बुझा कर सो जाय। परन्तु फिर उसे लगने लगा कि उसने दिया बुझा भी दिया तो उसे नीद नहीं आयगी। उसके हृदयमें यह भाव व्याप्त हो रहा था कि उसे इस स्थितिके सम्बन्धमें कुछ न कुछ अवश्य कहना या करना चाहिए। वह लेटा हुआ कई क्षण तक चुपचाप आगन्तुकों के चेहरोंका अध्ययन करता रहा। नवयुवती दरी पर लेट कर छतकी ओर देख रही थी। एक नवयुवक अपने घुटने पर पुस्तक और पुस्तक पर काग़ज़ रखकर कुछ लिख रहा था। दूसरा नवयुवक दीवारसे टेक लगाये हल्की-हल्की सीटी बजा रहा था। चौधरी उनके पारस्परिक सम्बन्धके विषयमें कल्पना करने लगा। क्या वे तीनों भाई-बहन थे ? वह बहुत ध्यानसे उनके चेहरोंकी रेखाओंका अध्ययन करने लगा। उसे उनके चेहरोंमें कोई समानता दिखायी नहीं दी। दोनों नवयुवक आकृतिमें एक-दूसरेसे बहुत भिन्न थे। उनकी त्वचा और बालोंके रंग भी नहीं मिलते थे। हाँ, नवयुवती के बालोंका रंग थोड़ा एक नवयुवकके बालोंसे मिलता था। परन्तु बालोंका रंग इस बातका प्रमाण कैसे माना जा सकता था कि वे भाई-बहन हैं ? फिर उनके साथ घरका कोई और व्यक्ति क्यों नहीं था ? तो क्या वह नवयुवती उनमेंसे किसी एककी पत्नी थी ? चौधरीको यह भी संभव प्रतीत नहीं हुआ क्योंकि नवयुवतीके भाव, चेष्टाओं और वस्त्रोंमें पत्नीत्व का कोई लक्षण नहीं था। व्यवहारमें संकोच न रहने पर भी उसके चेहरे पर कौमार्यकी छाया विद्यमान थी। तो क्या...और तीसरी संभावना पर आते ही जैसे चौधरीको निश्चित उत्तर मिल गया। उसे लगा जैसे वह आरम्भसे ही वही बात सोच रहा था। वे लड़के अवश्य उस लड़कीको भगा कर लाये थे। उसका तर्क इस विचारकी पुष्टि करने लगा। उन लोगोंके पास सामान बहुत थोड़ा था। उनके चेहरोंसे उद्विग्नता झलक रही थी। फिर वे बहुत थके हुए प्रतीत होते थे। चौधरी निष्कर्ष पर पहुँच कर उठ बैठा। कुछ क्षण वह नैतिक चेतनाकी दृष्टिसे उन्हें देखता रहा। फिर उसने एक नवयुवकको लक्षित करके पूछा, "तुम लोग कहाँसे आये हो ?"

उसके शब्द वातावरणकी ध्वनियोंमें खोकर रह गये । नवयुवक उसकी ओर ध्यान न देकर लिखनेमें व्यस्त रहा । चौधरीको लगा कि वह शब्दोंका उच्चारण खुले गलेसे नहीं कर पाया । उसने गला साफ़ करके ज़रा ऊँचे स्वरमें पूछा, "तुम लोग कहाँसे आये हो ?"

इस बार नवयुवकने उसकी ओर ज़रा देखा और पुनः अपने काममें व्यस्त हो गया ।

"तुम लोग कहाँसे आये हो ?" चौधरीने उठकर उनके निकट जाते हुए प्रश्न फिरसे दोहराया ।

चौधरीके निकट आने पर नवयुवती उठकर बैठ गयी । वह नवयुवक जो दीवारसे टेक लगाकर सीटी बजा रहा था, सीधा हो गया । उसने कुछ उत्तेजित स्वरमें चौधरीसे पूछा, "क्या बात है ? आप क्या चाहते हैं ?"

ऐसे स्वरमें संबोधित किये जानेसे चौधरीने अपनेको अपमानित अनुभव किया । उसने नवयुवकको तीखी नज़रसे देखा । वह उनसे कई प्रश्न पूछनेके लिए तैयार होकर उठा था । पहले प्रश्नका उत्तर पा कर वह दूसरा प्रश्न पूछता कि उनका आपसमें क्या संबन्ध है ! फिर वह पूछता कि वे तत्तापानी किस मतलबसे आये हैं । परन्तु अब वह कुछ न पूछ कर दरवाज़ेकी ओर चल पड़ा ।

चौधरी इस विचारसे दरवाज़ेकी ओर चला था कि वह आसपासके लोगोंसे उस सम्बन्धमें बात करके उन्हें साथ ले कर आयगा । पर बाहर वर्षा ज़ोरकी हो रही थी । कमरेसे निकलते ही पूरी तरह भीग जानेका डर था । वह कुछ क्षण अनिश्चित-सा खड़ा रह कर फिर चबूतरे पर लौट आया । दियेकी लौ अब बहुत मन्द हो गयी थी । किसी भी क्षण उसके बुझ जानेकी संभावना थी । चौधरीको महसूस हो रहा था कि कमरेमें दियेका जलते रहना आवश्यक है । क्यों, इसका उसे कोई चेतन आभास नहीं था । बस दिया जलता रहना चाहिए, यही अस्पष्ट-सा आभास था ।

उसने और तेल मँगवानेके उद्देश्यसे खिड़कीके पाससे चौकीदारको आवाज़ दी। चौकीदारने आवाज़का उत्तर नहीं दिया तो उसने गला साफ़ करके फिर आवाज़ दी, "चौकीदार।"

परन्तु चौकीदार रातकी कमाई सँभाल कर अपनी कोठरीमें चला गया था और बाहर मूसलाधार वर्षाका स्वर गूँज रहा था, अतः उसकी आवाज़ चौकीदारके कानों तक नहीं पहुँच सकी। उसने तीसरी बार चेष्टा की पर कोई परिणाम नहीं निकला। हार कर वह पुनः चबूतरे पर लेट गया और दियेकी मद्धम पड़ती हुई लौको देखने लगा।

सहसा दियेकी लौ झपक कर बुझ गयी। अँधेरा हो जानेसे चौधरीके हृदय पर आघात-सा लगा। बादल ज़ोरसे गरजा। चौधरी उठ कर बैठ गया। वर्षाका स्वर और भी तेज़ हो गया था। सावनके बादलोंका इस तरह बरसना चौधरीको अस्वाभाविक लग रहा था। प्रकृति जैसे जानबूझ कर अनैतिकताको प्रश्रय दे रही थी। कमरेके दूसरे भागमें ज़रा भी आहट सुनायी देती तो चौधरीकी आँखें घूर-घूर कर उस दिशाकी ओर देखने लगतीं, यद्यपि अँधेरा इतना था कि अपना हाथ भी देख पाना असम्भव था। आँखें देखनेमें जितनी असमर्थ थीं, चौधरीकी कल्पना उस समय उतनी ही उर्वर हो कर उसे कितना कुछ दिखला रही थी! उसने पुनः एक बार सो जानेकी चेष्टा की पर उसे नींद नहीं आयी। वह देर तक करवटें बदलता पड़ा रहा।

कुछ समयके बाद कमरेके दूसरे भागसे नवयुवकोंके धीमे स्वरमें बातचीत करनेका शब्द सुनायी देने लगा। चौधरीकी संपूर्ण चेतना उस ओर उन्मुख हो उठी। परन्तु बहुत चेष्टा करके भी वह उनकी बातचीतका आशय नहीं समझ सका। एक तो शब्दोंका उच्चारण स्पष्ट नहीं था और दूसरे उनकी बातचीतमें कोई ऐसा सूत्र नहीं मिल रहा था, जिसे पकड़ कर चौधरी की कल्पना आगे बढ़ सकती। बातचीतमें बार-बार सुकेत शब्दका प्रयोग होनेसे वह इतना ही समझ सका कि या तो वे लोग सुकेतसे आये हैं, या सुकेत

जा रहे हैं। कुछ देरके बाद बातचीत रुक गयी और चौधरीके पास आगे बढ़नेके लिए अपनी कल्पना ही रह गयी।

धीरे-धीरे वर्षा धीमी पड़ गयी। जब वर्षाका शब्द बिल्कुल रुक गया तो चौधरी बाहर जानेके उद्देश्यसे अपने स्थानसे उठा। उसने टटोल कर अपने कोटकी जेबसे माचिसकी डिबिया निकाली और एक दियासलाई जलायी। दियासलाई कुछ अस्पष्ट-सी रेखाएँ दिखाकर जलते ही बुझ गयी। उसने दूसरी दियासलाई जलायी और हाथकी ओट करके उसे ठीकसे लौ पकड़ लेने दिया। हाथ हटाने पर उसने देखा कि वे तीनों दो दरियाँ साथ-साथ बिछा कर उन पर सो गये हैं। वह कुछ क्षण असमंजसमें खड़ा रहा। फिर कमरेसे बाहर निकल आया।

हल्की-हल्की फुहार अब भी पड़ रही थी। सतलुजके बहनेका शब्द अब अधिक स्पष्ट सुनायी दे रहा था। बाहर आते ही चौधरीके शरीरमें हल्की-सी कपकँपी दौड़ गयी। आसपासके कमरोंका वातावरण निःस्तब्ध प्रतीत हो रहा था। केवल दो नंबर कमरेके बाहर बैठी हुई एक रोगिणी कुतिया बिलबिला रही थी। चौधरीने क्षणभर रुक कर सोचा और फिर धीरे-धीरे चार नंबर कमरेकी दहलीज़ तक चला गया। उस कमरेमें कई बिस्तर बिछे हुए थे—एक बिस्तर तो बिल्कुल दहलीज़के साथ सटा हुआ था। चौधरीने एक दियासलाई जलायी। उसके दियासलाई जलाते ही दहलीज़के पास सोया हुआ व्यक्ति हड़बड़ा कर बोल उठा, "कौन है? क्या कर रहा है इस वक़्त यहाँ?"

चौधरी वहाँसे उल्टे पाँव लौट पड़ा। उसका फिर और किसी कमरेमें जानेका साहस नहीं हुआ। उसने क्षण भर अपने कमरेके बाहर रुक कर सोचा और यह निश्चय किया कि लोगोंको जगा कर उनसे बात करनेकी अपेक्षा चौकीदारको जगा कर उससे बात करना ज़्यादा अच्छा है। वह चौकीदारकी कोठरीकी ओर चल दिया। वहाँ पहुँच कर उसने दो बार उसका दरवाज़ा खटखटाया पर चौकीदारकी आँख नहीं खुली। चौधरी साथ उसे आवाज़ भी देने लगा।

तीन चार बार आवाज़ देने पर चौकीदार थोड़ा कुनमुनाया। उसने वाक्यके साथ गाली जोड़ कर अन्दरसे पूछा कि कौन इतनी रात गये उसकी नींद ख़राब कर रहा है। चौधरीने यथासम्भव थोड़े शब्दोंमें उसे बतलाया कि वह चार नंबर कमरे वाला चौधरी है, जिसने अठन्नी देकर उससे कमरा लिया था। फिर वह संक्षिप्त-सी भूमिकाके साथ बतलाने लगा कि उसके कमरेमें एक नवयुवती और दो नवयुवक सोये हुए हैं, जिनके सम्बन्धमें वह उससे कुछ बात करना चाहता है।

"अब सो जाओ जी, सबेरे बात करना", चौकीदार निद्रित और उकताये हुए स्वरमें बोला, "सब कमरोंमें एक-सा ही हाल है।" और उसने पुनः वाक्यके साथ गाली जोड़ कर कहा कि सारा अपराध बादलोंका है, जिन्होंने मौसमके आरम्भमें ही ऐसी झड़ी लगा दी है।"

"तुम बाहर निकल कर बात तो सुनो", चौधरी ने झुँझला कर कहा "मुझे उन लोगों पर कुछ शक हो रहा है। मेरा ख्याल है कि वे लड़के उस लड़कीको भगा कर लाये हैं..."

परन्तु उत्तरमें चौकीदारके खुर्राटे भरनेका शब्द सुनायी देने लगा। चौधरी बहुत कठिनतासे अपनी झुँझलाहट दबा कर वहाँसे लौटा। कुछ क्षण वह फिर अपनी दहलीज़के बाहर रुका रहा। अब उसने निश्चय किया कि वह सबेरे तड़के ही उठ कर लोगोंसे न केवल अपने सन्देहकी बात करेगा, बल्कि चौकीदारकी भी शिकायत करेगा कि वह धर्मशालाकी चौकीदारी करनेके लायक़ क़तई नहीं।

उस समय पासके खच्चर वालोंके डेरेसे एक नवयुवकके गानेका शब्द सुनायी दे रहा था। डेरेमें टीनके छप्परके नीचे उन लोगोंने शायद रोशनी रखनेके लिए आग जला रखी थी। आगकी लपटें सामनेकी पहाड़ियों पर अस्थिर रोशनी डाल रही थीं। वर्षाके बाद ज़मीनमेंसे हल्की-हल्की बास उठने लगी थी। चौधरी भीगे हुए वातावरण पर एक असंतुष्ट दृष्टि डाल

कर अपने चबूतरे पर लौट आया। बहुत देर बाद जब उसकी आँख लगी तो रात आधीसे अधिक बीत चुकी थी।

सबेरे जिस समय चौधरीकी आँख खुली, दिन काफ़ी चढ़ चुका था यद्यपि बादल छाये रहनेके कारण लगता था कि अभी तड़का ही है। उठते ही पहले चौधरीकी नज़र कमरेके दूसरे भागकी ओर गयी। वे लोग वहाँ नहीं थे। उनका सामान भी नहीं था। केवल दो एक मसले हुए काग़ज इधर-उधर पड़े थे। चौधरी जल्दीसे उठ कर बाहर निकल आया। उसकी दृष्टि अनायास सुकेत जाने वाली सड़ककी ओर उठ गयी। कुछ खच्चरें सुकेतकी ओरसे आ रही थीं। दो एक मज़दूर आलुओंके बोरे लिये आ रहे थे। उसी समय चौकीदार पासके एक कमरेसे निकला। चौधरीने उससे उन लोगोंके संबन्धमें पूछा और यह जान कर कि वे दो घण्टे पहले वहाँसे चले गये हैं, वह उसे उसकी अनवधानताके लिए डाँटने लगा। चौधरीका विवरण सुन कर चौकीदार ज़रा तुनक कर बोला, "मैं धर्मशालाकी चौकीदारी करता हूँ जी, यहाँ आने वालोंके धर्म ईमानकी चौकीदारी नहीं करता। मुझे क्या पता कि कौन क्या है और कौन कैसा है। अभी चार नंबर वाले कह रहे थे कि रातको कोई चोर उनके कमरेमें आया था और दियासलाई जला कर इधर उधर देख रहा था। एक बाबू उसे पकड़नेके लिए उठा तो वह भाग गया। बताइये, मैं किस-किसके पीछे जा सकता हूँ? मेरा काम आप लोगोंको कमरे दे देना है, बस और कुछ नहीं।"

चार नंबरकी घटनाके विषयमें सुन कर चौधरी चुप रह गया। उस घटनाकी वास्तविकतासे वह अकेला ही परिचित था। आशंकाकी हल्की सी अनुभूतिके साथ उसके मनमें यह ग्लानि भी उत्पन्न हुई कि लोग किस तरह वास्तविकतासे अपरिचित होते हुए किसी विषयमें यों ही कहानी गढ़ लेते हैं। वह कमरेमें लौट आया। ज़मीन पर जो मसले हुए काग़ज़ इधर उधर पड़े थे, उनमेंसे एक काग़ज़ उसने उठा लिया। उसमें कुछ रक़में लिख कर रुपये पैसेका हिसाब किया गया था। उसे फेंक कर उसने दूसरा

काग़ज़ उठाया। उस पर अँग्रेज़ीमें कुछ लिखा था। चौधरी कुछ क्षण उन शब्दोंकी आकृतियाँ देखता रहा। फिर वह चश्मे पर जानेके इरादेसे नहानेका सामान लेकर बाहर निकला और कमरेको ताला लगाने लगा। पास ही एक बाबूस्वरूप व्यक्ति कधे पर तौलिया डाले खड़ा दातुन कर रहा था। चौधरीने ताला बन्द न करके दरवाजा खोल लिया और अन्दर जाकर वह मसला हुआ काग़ज़ उठा लाया, जिस पर अंग्रेजीमें कुछ लिखा था। अब निकल कर उसने ताला लगाया और उस बाबूस्वरूप व्यक्तिके निकट जा कर काग़ज़ उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "बाबू साहब, ज़रा पढ़िये इस काग़ज़ पर क्या लिखा है।" साथ ही वह उस कागज़का इतिहास सुनाने लगा कि दो लड़के एक लड़कीके साथ रातको उसके कमरेमें ठहरे थे, जो सबेरे तड़के ही उठ कर वहाँसे चले गये हैं; उनकी गतिविधिसे प्रतीत होता था कि वे लड़के उस लड़कीको भगा कर लाये हैं; और उस कागज़की लिपि उन्हीं लड़कोंमेंसे एकके हाथकी है।

चौधरीके विवरणके समाप्त होने तक उस व्यक्तिने कागज़ ऊपरसे नीचे तक पढ़ लिया था। चौधरीका ध्यान उसके चेहरेकी ओर नहीं था, अतः वह उसकी बदलती हुई भंगिमाको लक्षित नहीं कर सका। चौधरीके बात समाप्त करते ही उस पर एक ऐसी दृष्टि डाल कर जैसे उस पर उसे पागल होनेका सन्देह हो, उस व्यक्तिने काग़ज़ उसके हाथमें दे दिया और हटानेके ढंगसे हाथ हिला कर कहा, "जाओ।"

उस व्यक्तिका ऐसा व्यवहार चौधरीको असह्य लगा। परन्तु एक अपरिचित जगह पर उसने झगड़ा मोल लेना उचित नहीं समझा। किसी तरह अपना आवेश दबा कर तौलिया सँभाले हुए वह गंधकके चश्मेकी ओर चल दिया।

जिस समय चौधरी नहानेके लिए गन्धकके चश्मेमें बैठा, वर्षाकी हल्की-हल्की बूँदें फिर पड़ने लगी। उस समय वहाँ उसके अतिरिक्त एक ही और व्यक्ति था, जो अब नहा कर लौटनेकी तैयारी कर रहा था। सुकेतके

रास्ते पर दूर खच्चरोंकी घंटियाँ सुनायी दे रही थी। वर्षा आरम्भ हो जानेके कारण कुछ लोग उस रास्ते पर भागते हुए आ रहे थे और धर्मशाला की दिशामें जा रहे थे। क्षण भर चौधरी कुछ आशाके साथ उस ओर देखता रहा। उस रास्ते पर दूर आगे जाती हुई तीन आकृतियोंकी कल्पनासे उसकी चेतनामें फिर कुछ विह्वलता-सी भर गयी। उसने चश्मेसे निकल कर अपनी क़मीज उठायी और उसे एक जगह पत्थरकी ओटमें रख कर उसकी जेबसे वह काग़ज निकाल लिया। जो व्यक्ति नहा कर लौट रहा था, उसे सम्बोधित करते हुए उसने पूछा, "भाई साहब, यह काग़ज़ ज़रा पढ़ दीजिएगा?"

इस बार उसने काग़ज़का इतिहास पहलेसे सुनाना उचित नहीं समझा।

उस व्यक्तिने काग़ज़ पढ़ा और चौधरीको बतलाया कि उस पर केवल कुछ पुस्तकों और स्थानोंके नाम लिखे हैं। चौधरी बहुत उत्सुकतापूर्वक उस काग़ज़की लिपिका अर्थ जाननेकी प्रतीक्षा कर रहा था। यह जान कर उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे सहसा उसके पाससे कुछ खो गया हो। उसके स्वरमें कुछ उलझन और अविश्वासकी ध्वनि आ गयी, जब उसने कहा, "ज़रा ऊपरसे पढ़ कर बता दीजिए, मेरा तो ख़्याल था कि..."

वह व्यक्ति आरम्भसे अर्थ करने लगा, "खेती और समाजवाद", दो प्रतियाँ नालधेरा, दो प्रतियाँ दुर्गापुर, तीन प्रतियाँ बसन्तपुर। 'सामूहिक खेती बाड़ी", एक प्रति नालधेरा, दो प्रतियाँ दुर्गापुर, दो प्रतियाँ बसन्तपुर..."

और वह लंबी सूची पढ़ता गया। चौधरी अवाक् भावसे उसकी ओर देखता रहा। जब वह व्यक्ति काग़ज़ उसके हाथमें दे कर अपने रास्ते पर चला गया, तो वह फिरसे आ कर गन्धकके चश्मेमें बैठ गया। दो फुटके अन्तर पर सतलुजकी धार आवाज़ करती हुई बह रही थी। आस-पासकी मिट्टीमेंसे काफ़ी बास उठ रही थी। चौधरी गन्धकके धुएँमें घिरा हुआ गर्म पानी अपने शरीर पर मलता रहा। उसकी नज़र अब भी सुकेत जाने वाले रास्ते पर लगी थी और वह रह-रह कर सोच रहा था कि उस काग़ज़ की लिपिका उन लोगोंके साथ क्या सम्बन्ध हो सकता है और आख़िर वे एक-दूसरे का क्या लगते हैं...?

●

उसकी रोटी

बालोको पता था कि अभी बसके आनेमें बहुत देर है, फिर भी पल्लेसे पसीना पोंछते हुए उसकी आँखें बार-बार सड़ककी तरफ़ उठ जाती थीं। नकोदर रोडके उस भागमें आसपास कोई छायादार पेड़ भी नहीं था। वहाँकी ज़मीन भी बंजर और ऊबड़-खाबड़ थी—खेत तो वहाँसे तीस-चालीस गज़के फ़ासलेसे शुरू होते थे। और खेतोंमें भी उन दिनों कुछ नहीं था। फ़सल कटनेके बाद केवल ज़मीनकी गोड़ाई ही की गयी थी, इसलिए चारों ओर बस मटियालापन ही दिखायी देता था। गर्मीसे पिघली हुई नकोदर रोडका हल्का सुरमई रंग ही उस मटियालेपनसे ज़रा भिन्न था। जहाँ बालो खड़ी थी वहाँसे थोड़े अंतर पर एक लकड़ीका खोखा था। उसमें दो बड़े-बड़े पानीके मटकोंके पास एक अधेड़-सा व्यक्ति ऊँघ रहा था। ऊँघमें जब वह आगेको गिरनेको होता तो सहसा झटका खाकर सँभल जाता। फिर आस-पासके वातावरण पर एक उदास-सी नज़र डाल कर और अँगौछेसे गलेका पसीना पोंछकर वैसे ही ऊँघने लगता। एक ओर अढ़ाई तीन फ़ुटके विस्तारमें खोखेकी छाया फैली थी और एक भिखमंगा, जिसकी दाढ़ी काफ़ी बढ़ी हुई थी, वहाँ खोखेसे टेक लगाये बैठा ललचायी आँखोंसे बालोके हाथोंकी ओर देख रहा था। उसके पास ही एक कुत्ता दुबक कर बैठा था और उसकी नज़रें भी बालोके हाथोंकी ओर ही लगी हुई थी।

बालोने अपने हाथकी रोटीको अपने मैले आँचलमें लपेट रखा था। वह उसे बद नज़रसे बचाये रखना चाहती थी। रोटी वह अपने पति सुच्चा सिंह ड्राइवरके लिए लायी थी, मगर देर हो जानेसे सुच्चा सिंहकी बस निकल गयी थी और वह अब इस इंतज़ारमें खड़ी थी कि बस नकोदरसे

हो कर लौट आये तो वह उसे रोटी दे दे । वह जानती थी कि उसके वक़्त पर वहाँ न पहुँचनेसे सुच्चा सिंहने बहुत गुस्सा किया होगा । वैसे ही उसकी बस जालंधरसे चल कर दो बजे वहाँ आती थी और उसे नकोदर पहुँच कर रोटी खानेमें तीन साढ़े तीन बज जाते थे । वह उसकी रातकी रोटी भी उसे साथ ही दे जाती थी, जो वह आख़िरी फेरेमें नकोदर पहुँच कर खाया करता था । सात दिनमें छह दिन सुच्चा सिंहकी डचूटी रहती थी और छहों दिन यही सिलसिला चलता था । बालो एक सवा एक बजेके करीब रोटी लेकर गाँवसे चलती थी और धूपमें आधा कोस रास्ता तय करके दो बजेसे पहले सड़कके किनारे पहुँच जाती थी । अगर कभी उसे दो-चार मिनिटकी देर हो जाती तो सुच्चा सिंह किसी न किसी बहानेसे बसको वहाँ रोके रखता मगर उसके आते ही उसे डाँटने लगता कि वह सरकारी नौकरी करता है, उसके बापकी नौकरी नहीं करता कि उसकी इंतज़ारमें बस खड़ी रखा करे । वह चुपचाप उसकी डाँट सुन लेती और रोटी उसे दे देती ।

परन्तु आज वह दो चार मिनिट नहीं, दो अढ़ाई घंटेकी देरसे आयी थी । यह जानते हुए भी कि उस समय वहाँ पहुँचनेका कोई मतलब नहीं, वह उद्विग्नताकी मारी घरसे चल दी थी—जैसे उसे लग रहा था कि वह जितना ज़्यादा समय सड़कके किनारे इंतज़ार करती हुई बितायगी, सुच्चा सिंहकी नाराज़गी उतनी ही कम हो जायगी । यह तो निश्चित ही था कि सुच्चा सिंहने दिनकी रोटी नकोदरके किसी तंदूरमें खा ली होगी । परन्तु उसे रातकी रोटी देना ज़रूरी था और साथ ही वह सारी बात बताना भी ज़रूरी था जिसकी वजहसे उसे देर हुई थी । वह मन ही मन पूरी घटनाको दोहरा रही थी और सोच रही थी कि सुच्चा सिंहसे बात किस तरह कही जाय कि उसे सब कुछ पता भी चल जाय और वह ख़ामख़ाह तैशमें भी न आय । वह जानती थी कि सुच्चा सिंहका गुस्सा बहुत बुरा है और साथ ही यह भी जानती थी कि जंगीसे कुछ कहा जाय तो वह बग़ैर गँड़ासेके बात नहीं करता ।

जंगीके बारेमें गाँवमें बहुत-सी बातें सुनी जाती थीं। पिछले साल वह साथके गाँवकी एक मेहरीको भगाकर ले गया था और न जाने कहाँ ले जाकर बेच आया था। फिर नकोदरके पंडित जीवारामके साथ उसकी लड़ाई हुई तो उसने उसे क़त्ल करवा दिया। गाँवके लोग उससे दूर दूर रहते थे मगर उससे बिगाड़ कर नहीं रखते थे। मगर उसकी लाख बुराइयाँ सुन कर भी बालोने यह कभी नहीं सोचा था कि वह इतनी गिरी हुई हरकत भी कर सकता है कि चौदह सालकी जिंदांको अकेली देख कर उसे छेड़नेकी कोशिश करे। वह वैसे भी जिंदांसे तिगुनी उम्रका था और अभी साल पहले तक उसे बेटी बेटी कह कर बुलाया करता था। मगर आज उस की यह हिम्मत पड़ गयी कि उसने खेतमें जिंदांका हाथ पकड़ लिया ?

उसने जिंदांको नन्तीके यहाँसे उपले माँग लानेको भेजा था। इनका घर खेतोंके एक सिरे पर था और गाँवके बाकी घर खेतोंके दूसरे सिरे पर थे। वह आटा गूंध कर इंतज़ार कर रही थी कि जिंदां उपले ले कर आये तो वह जल्दीसे रोटियाँ सेंक ले जिससे बसके समयसे पहले सड़क पर पहुँच जाय। मगर जिंदां जब आयी तो उसके हाथ ख़ाली थे और उसके चेहरेका रंग हल्दीकी तरह पीला हो रहा था। जब तक जिंदां नहीं आयी थी तब तक उसे उस पर ग़ुस्सा आ रहा था। मगर उसे देखते ही उसका दिल अज्ञात आशंकासे भर गया।

"हाय री, क्या हुआ है जिंदो, ऐसी क्यों हो रही है ? उपले क्यों नहीं लायी ?" उसने ध्यानसे उसके चेहरेको देखते हुए पूछा।

जिंदां चुपचाप उसके पास आ कर बैठ गयी और बाँहोंमें सिर डाल कर रोने लगी।

"ख़सम खानी, कुछ बतायगी भी क्या बात हुई है ?"

जिंदां कुछ नहीं बोली। केवल उसके रोनेका स्वर तेज़ हो गया।

"बता किसीने कुछ कहा है ?" उसने अब नरम स्वरमें उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा।

"तू मुझे उपले वुपले लेने मत भेजा कर", जिदां रोनेके बीच उखड़ी उखड़ी आवाज़में बोली, "मै आजसे घरसे बाहर कहीं नहीं जाऊँगी । मुआ जंगी मुझसे कहता था..." और रोनेका स्वर उभर आनेसे वह आगे कुछ नहीं कह सकी ।

"क्या कहता था जंगी..बता..बोल..." वह बोझके नीचे दब कर आवेशके साथ बोली, "खसम खानी, बोलती क्यों नहीं ?"

"कहता था", जिदांने सिसकते हुए कहा, 'आ जिदां, अंदर चलकर शरबत पी ले । आज तू बहुत सोहणी लग रही है..."

"मुआ कमज़ात !" वह सहसा बरस पड़ी, "मुएको अपनी माँ रंडी नहीं सोहणी लगती ? मुएकी नज़रमें कीड़े पड़ें । निपूते, तेरे घरमें लड़की होती तो इससे बड़ी होती, तेरे दीदे फटें !...फिर तू ने क्या कहा ?"

"मैंने कहा चाचा मुझे प्यास नहीं है", जिदां कुछ स्वस्थ होती हुई बोली ।

"फिर ?"

"कहने लगा प्यास नहीं है तो भी एक घूँट पीती जा । चाचाका शरबत पीएगी तो याद करेगी ।...और मेरी बाँह पकड़ कर खींचने लगा ।"

"हाय रे मौत मरे, तेरा कुछ न रहे, तेरे घरमें आग लगे । आने दे सुच्चा सिंहको । मै तेरी बोटी बोटी न नुचवाऊँ तो कहना, जल मरे ! तू सोया सो ही जाए ।...हाँ, फिर ?

"मै बाँह छुड़ाने लगी तो मुझे मिठाईका लालच देने लगा । मेरे हाथसे उपले गिर गये । मैंने उन्हें वहीं पड़े रहने दिया और बाँह छुड़ा कर भाग आयी ।"

उसने ग़ौरसे जिदांको सिरसे पैर तक देखा और फिर अपने साथ सटा लिया ।

"और तो नहीं उसने कुछ कहा ?"

"जब मैं चली तो पीछेसे ही ही करके बोला, बेटी तू बुरा मान गयी ? अपने उपले तो ले जा । मै तो तेरे साथ हँसी कर रहा था । तू इतना भी

नहीं समझती ? आ इधर । अच्छा नहीं आती, तो न आ । मैं आज तेरे घर आकर तेरी बहनसे तेरी शिकायत करूँगा कि जिंदां बड़ी गुस्ताख़ हो गयी है, बड़ोंका कहा नहीं मानती । . . .मगर मैंने न उसे जवाब दिया, न मुड़ कर उसकी तरफ़ देखा । सीधी घर चली आयी ।"

"अच्छा किया । मैं मुएकी हड्डी पसली एक करा कर छोड़ूँगी । तू आने दे सुच्चा सिहको । मैं अभी जाकर उससे बात करूँगी । इसे यह नहीं पता कि जिंदां सुच्चा सिंह ड्राइवरकी साली है, ज़रा सोच समझ कर हाथ लगाऊँ ।" और फिर कुछ सोच कर उसने पूछा, "वहाँ तुझे और किसीने तो नहीं देखा ?"

"नहीं । खेतोंके इस तरफ़ आमके पेड़के नीचे राधू चाचा बैठा हुक्का पी रहा था । उसने देख कर पूछा कि बेटी इस वक़्त धूपमें कहाँसे आ रही है ? मैंने कहा कि बहनके पेटमें दर्द था, हक़ीमजीसे चूरन लेने गयी थी । उसने कहा आ मेरे पास बैठ । मगर मैं बैठी नहीं, घर चली आयी ।"

"अच्छा किया । जंगी मुआ तो शोहदा है । उसके साथ अपना नाम लग जाय तो अपनी ही इज्जत जायगी । उस सिर जलेका क्या जाना है ? लोगोंको तो करनेको बात चाहिए ।"

और उसके बाद उपले ला कर खाना बनानेमें उसे काफ़ी देर हो गयी । जिस समय उसने कटोरेमें आलूकी तरकारी और आमका अचार रख कर उसे रोटियोंके साथ खद्दरके टुकड़ेमें लपेटा, उस समय उसे पता था कि दो कबके बज चुके हैं और वह सुच्चा सिंहको दोपहरकी रोटी नहीं पहुँचा सकती । इसलिए वह लपेटी हुई रोटी रख कर इधर उधरके काम करने लगी । मगर जब वह बिल्कुल ख़ाली हो गयी तो उससे यह नहीं हो सका कि बसके लौटनेके समयका अंदाज़ करके घरसे चले । मुश्किलसे साढ़े तीन चार ही बजे थे कि वह चलनेके लिए तैयार हो गयी ।

"बहन, तू कब तक वापस आयगी ?" जिंदांने उससे पूछा ।

"दिन ढलनेसे पहले ही आ जाऊँगी ।"

"जल्दी आ जाना । मुझे अकेले डर लगेगा ।"

"डर काहेका है री ?" वह दिखावटी साहसके साथ बोली, "किसकी हिम्मत है जो तेरी तरफ़ आँख उठा कर भी देखे ? सुच्चा सिंहको पता चलेगा तो वह उसे कच्चा ही नहीं चबा जायगा ? ..वैसे मुझे ज़्यादा देर नहीं लगेगी । साँझ होते होते घर पहुँच जाऊँगी । तू ऐसा करना कि अंदरसे साँकल लगा लेना । समझी ? कोई दरवाज़ा खटखटाये तो पहले नाम पूछ लेना ।" और फिर उसने ज़रा धीमे स्वरमें कहा, "और अगर वह आये और मेरे बारेमें पूछे कि कहाँ गयी है तो कहना कि सुच्चा सिंहको बुलाने गयी है । समझी ?...या नहीं । तू उससे कुछ नहीं कहना । अंदरसे जवाब ही नहीं देना । समझी ? वैसे मेरा ख़्याल नही कि वह आये । पर ख़ैर तू ध्यानसे रहना ।"

जब वह दहलीज़के पास पहुँची तो जिंदांने पीछेसे कहा, "बहन, मेरा दिल धड़क रहा है ।"

"पागल हुई है ?" उसने उसे प्यारके साथ झिड़का, "साथ ही गाँव है फिर तुझे डर किस बातका है ? और तू आप भी मुटियार है, इस तरह हौसला छोड़ती है ?"

मगर जिदांको दिलासा दे कर भी उसकी अपनी तसल्ली नहीं हुई । सड़कके किनारे पहुँचनेके क्षणसे ही वह चाह रही थी कि किसी तरह बस जल्दी लौट आय जिससे वह रोटी दे कर उड़ती हुई जिदांके पास घर पहुँच जाय ।

"वीरा, दो बजे वाली बसको गये कितनी देर हुई है ?" उसने भिखमंगे को लक्षित करके पूछा जिसकी आँखें अब भी उसके हाथकी रोटी वाली पोटली पर टिकी हुई थीं । धूपकी चुभन अभी कम नहीं हुई थी, यद्यपि खोखेकी छाया अब पहलेसे काफ़ी लंबी हो गयी थी । कुत्ता प्याऊके तख़्तेके नीचे जमा पानीको मुँह लगाकर अब उसके आसपास चक्कर काट रहा था ।

"पता नही भैणा", भिखमंगेने कहा, "कई बसें आती हैं कई जाती हैं । यहाँ कौन घड़ीका हिसाब है ?"

बालो चुप कर रही। एक बस थोड़ी देर पहले उसके सामने ही नकोदरकी तरफ़ गयी थी। धूलके फैलावके दोनों ओर उसे लग रहा था कि दो अलग अलग दुनियाएँ है। बस एक दुनियासे आती है और दूसरी दुनियाकी तरफ़ चली जाती है। कैसी होंगी वे दुनियाएँ जहाँ बड़े-बड़े बाज़ार हैं, हर चीज़की दुकानें है और जहाँ एक ड्राइवरको अपनी आमदनी का तीन चौथाई हिस्सा खर्च करके भी तसल्ली नहीं मिलती ? देवी एक दिन उससे कह रहा था कि सुच्चा सिंहने नकोदरमें एक रखेल रख रखी है। उसका कितना मन था कि वह एक बार उस औरतको देखे जिससे उसे पता चल जाय कि एक रखेलमे क्या होता है जो घरकी औरतमें नहीं होता, और जिसे पानेके लिए एक आदमी घर-बारकी तरफ़ इतना बेपर्वाह हो सकता है ? उसने एक बार सुच्चा सिंहसे कहा कि मुझे शहर दिखा ला, तो उसने उसे डाँट कर जवाब दिया, "क्यों, तेरे पर निकल रहे है ? घरमें तुझे चैन नहीं पड़ता ? सुच्चा सिंह वह मर्द नहीं है कि औरतकी बाँह पकड़ कर सड़कों पर घुमाता फिरे। ऐसा शौक़ है तो दूसरा खसम कर ले। मेरी तरफ़से खुली छुट्टी है।"

उस दिनके बाद वह यह बात ज़बान पर भी नही लायी थी। सुच्चा सिंह कैसा भी हो, उसके लिए वही सब कुछ था। वह उसे गालियाँ दे लेता था, मार पीट लेता था, फिर भी उसे उससे इतना प्यार तो था कि हर महीने तनख़ाह मिलने पर उसे बीस रुपये दे जाता था। लाख बुरी कह कर भी वह उसे अपनी घर वाली तो समझता था ! वह ज़बानका कड़वा भले ही हो, दिलका बुरा क़तई नही था। वह उसके जिंदांको घरमें रख लेने पर अक्सर कुढ़ा करता था, मगर आप ही पिछले महीने उसके लिए काँचकी चूड़ियाँ और अढ़ाई गज़ मलमल लाकर दे गया था।

एक बस धूल उड़ाती हुई क्षितिजके उस छोरसे इस ओरको आ रही थी। बालोने दूरसे ही पहचान लिया कि वह सुच्चा सिंह वाली बस नहीं है। फिर भी जब तक बस पास नही आ गयी, वह उत्सुक आँखोंसे उसकी

ओर देखती रही । बस प्याऊके सामने आ कर रुक गयी । एक आदमी प्याज़ और शलजमका गट्ठर लिये हुए वहाँ उतरा । कण्डक्टरने जोरसे दरवाजा बंद किया और बस आगे चल दी । जो आदमी बस से उतरा था उसने प्याऊके पास जाकर प्याऊ वाले को जगाया और चुल्लूसे दो लोटे पानी पी कर मूँछें साफ़ करता हुआ अपने गट्ठरके पास आ गया ।

"वीरा, नकोदरसे अगली बस कितनी देर तक आयगी ?" बालोने दो क़दम आगे बढ़कर उस व्यक्तिसे पूछा ।

"हर घंटेके बाद बस चलती है माई", वह बोला, "तुझे कहाँ जाना है ?"

"जाना कहीं नहीं वीरा, बसकी इंतज़ार करनी है । सुच्चा सिंह ड्राइवर मेरा घर वाला है । उसकी रोटी देनी है ।"

"अच्छा, सुच्चा स्यों !" और उस व्यक्तिके ओंठों पर ख़ास तरह की मुसकराहट फैल गयी ।

"तू उसे जानता है ?"

"उसे नकोदरमें कौन नहीं जानता ?"

बालोको उसका कहनेका ढंग कुछ ऐसा लगा कि वह चुप हो रही । सुच्चा सिंहके बारेमें जिन बातोंको वह खुद जानती थी उन्हें दूसरोंके मुँहसे सुनना उसे गवारा नहीं था । उसकी समझ में नही आता था कि दूसरोंको क्या अधिकार है कि वे उसके बारे में इस तरहसे बात करें ? जब वह उसकी घरवाली होकर उसे बुरा नहीं समझती तो दूसरोंको क्यों उसे देख कर जलन होती है ? वह आप कमाता है, अपनी कमाईसे जो चाहे करता है, लोगोंको उससे मतलब ?

"सुच्चा सिंह शायद अगली बस ले कर आयगा", वह व्यक्ति बोला ।

"हाँ ।"

"बड़ा ज़ालिम है जो तुझसे इस तरह इंतज़ार कराता है ।"

"चल वीरा, अपने रास्ते चल !" बालो चिढ़े हुए स्वरमें बोली, "वह बेचारा क्या इंतज़ार करायगा ? मुझे ही रोटी लानेमें देर हो गयी थी

जिससे उसकी बस निकल कर चली गयी । वह बेचारा सबेरेसे अब तक भूखा बैठा होगा ।"

"भूखा ? कौन सुच्चा स्यों ?" और वह व्यक्ति दाँत निकाल कर हँस दिया । बालोने उसकी ओरसे मुँह दूसरी तरफ़ कर लिया । "या साई सच्चे !" कह कर उस व्यक्तिने अपना गट्ठर सिर पर उठा लिया और खेतोंकी ओरकी पगडंडी पर चल दिया । बालोकी दायीं टाँग सो गयी थी । उसने भार दूसरी टाँग पर बदलते हुए एक लंबी साँस ली और दूर तकके वीरानेको देखने लगी ।

न जाने कितनी देर बाद क्षितिजके उसी कोनेसे दूसरी बस प्रकट हुई । तब तक खड़े खड़े बालोके पैरोंकी एड़ियाँ दुखने लगी थीं । बसको आते देख कर वह पोटलीका कपड़ा ठीक करने लगी । उसे खेद हो रहा था कि वह रोटियाँ कुछ और देरसे क्यों नहीं बना कर लायी, जिससे वे रात तक ज़रा और ताज़ा रहतीं । सुच्चा सिंहको कड़ाह प्रशादका इतना शौक़ है, उसे क्यों ध्यान नहीं आया कि आज उसके लिए थोड़ा कड़ाह प्रशाद ही बना लाती...ख़ैर कल गुरपरब है, कल वह ज़रूर उसके लिए कड़ाह प्रशाद बना कर लायगी । ...

पीछे गर्दकी लंबी लकीर छोड़ती हुई बस पास आती जा रही थी । बालोने बीस गज़ दूरसे ही सुच्चा सिंहका चेहरा देख कर समझ लिया कि वह बहुत नाराज़ है । उसे देख कर सुच्चा सिंहकी भवें तन गयी थीं और निचले ओंठका कोना दाँतोंमें चला गया था । बालोने धड़कते दिलसे रोटी वाला हाथ ऊपर उठा दिया । मगर बस उसके पास न रुक कर प्याऊ से भी ज़रा आगे निकल कर रुकी ।

दो एक व्यक्ति वहाँ बससे उतरने वाले थे । कण्डक्टर बसकी छत पर जा कर एक व्यक्तिकी साइकल नीचे उतारने लगा । बालो तेज़ीसे चल कर ड्राइवरकी सीटके बराबर पहुँच गयी ।

"सुच्चा स्याँ !" उसने रोटी वाला हाथ ऊँचा उठा कर खिड़कीके अंदर रोटी पहुँचानेकी चेष्टा करते हुए कहा, "सुच्चा स्यां, रोटी ले ले ।"

"हट जा, मुझे फुर्सत नहीं है", सुच्चा सिंहने उसका हाथ झटक कर पीछे हटा दिया ।

"सुच्चा स्यां, पहले एक मिनिट नीचे उतर कर मेरी बात सुन ले । आज दोपहरको खास बात हो गयी थी, नहीं तो मैं..."

"बक नहीं, हट जा इधर से", कह कर सुच्चा सिंहने कण्डक्टरको आवाज़ देकर पूछा कि वहाँका सारा सामान उतर गया है या नहीं ।

"बस एक पेटी है, उतार रहा हूँ" कण्डक्टरने बसकी छतसे आवाज़ दी ।

"सुच्चा स्यां, मै दो घंटेसे खड़ी हूँ", बालोने मिन्नतके लहजेमें कहा "तू नीचे उतर कर मेरी बात तो सुन ले ।...बेड़ा ग़र्क हो मुए जंगी का । मुएकी वजहसे तेरा खाना भी ख़राब हुआ और मुझे भी इतनी मुसीबत झोंकनी पड़ी ।" और उसने रोटी वाला हाथ फिर ऊँचा उठा दिया ।

"उतर गयी पेटी ?" सुच्चा सिहने आवाज दी ।

"हाँ, चलो", कण्डक्टरकी आवाज़ आयी ।

"सुच्चा स्यां !" बालोने मिन्नतके साथ हाथ और आगे बढ़ा दिया

"हट !" सुच्चा सिंहने दुतकार कर उसका हाथ फिर पीछे हटा दिया

"सुच्चा स्यां ! तू मुझ पर नाराज हो ले, पर रोटी तो रख ले तू मंगलवार को घर आयगा तो मै तुझे सारी बात बताऊँगी ।"

"मेरा कोई घर नही है । मंगलवारको आयगा तेरा..." और एक मोटी सी गाली दे कर सुच्चा सिंहने बस स्टार्ट कर दी ।

"हाय सुच्चा स्यां सुन तो सही !" बालोने उसे रुकनेकी हताश चेष्टा की । मगर बस चली गयी और वह धूलके बवंडरमें घिरी रह गयी उसने धूलकी गंधसे व्याकुल हो कर भी जल्दीसे रोटी वाली पोटलीको आँचलमें छिपा लिया, और तब तक छिपाये रखा जब तक वातावरणमें धूल बिल्कुल नहीं बैठ गयी ।

सूर्यके साथ साथ आकाशका रंग अब बदलने लगा था । गाहे बगाहे एकाध पक्षी उड़ता हुआ आकाशको पार कर जाता था । खेतोंमें कहीं

कही रंगीन पगड़ियाँ दिखायी देने लगी थी । बालोने प्याऊसे पानी पिया और फिर मुँह और आँखों पर छींटे मार कर आँचलसे मुँह पोंछ लिया । प्याऊसे कुछ क़दमके फ़ासले पर जा कर वह फिर खड़ी हो गयी । अब सुच्चा सिहकी बस जालंधरसे आठ नौ बजे तक लौटेगी । क्या उसे तब तक उसकी इंतजारी करनी चाहिए ? सुच्चा सिहको ऐसे नहीं करना चाहिए, कमसे कम उसकी बात तो सुन लेता । घरमें जिंदा अकेली डर रही होगी । अगर मुआ जंगी पीछे किसी बहानेसे घर आया तो क्या होगा ? सुच्चा सिह रोटी ले लेता तो वह आध घंटेमें घर पहुँच जाती । अब सुच्चा सिह की रोटीका क्या होगा ? रोटी तो ख़ैर वह बाहर कहीं न कही खा ही लेगा मगर उसका ग़ुस्सा किस तरह दूर होगा ? उसने कहा है कि वह मगलवारको घर नहीं आयगा । अगर वह सचमुच नही आया ?...उसे उसकी और मिन्नत करनी चाहिए थी । सुच्चा सिहका ग़ुस्सा ठीक है । उसे क्या पता कि रोटीमें क्यों देर हुई है ? उसका मेहनती शरीर है और उसे कस कर भूख लगती है । वक़्त पर खाना न मिले तो उसे ग़ुस्सा भी न आये ? वह ज़्यादा मिन्नत करती तो वह ज़रूर मान जाता । अब ?

प्याऊ वाला प्याऊ बंद कर रहा था । भिखमंगा भी न जाने कब का उठ कर वहाँसे चला गया था । हाँ, कुत्ता अब भी उसके आस पास घूम रहा था । धूप ढल रही थी और आकाशमें उड़ते हुए चिड़ियोंके गिरोह सोनेके पंखोंसे जड़े हुए लग रहे थे । हर चीज़की छाया लबी हो गयी थी और बालोको अपनी सड़कके पार तक फैली हुई छाया बहुत अजीब लग रही थी । पासके खेतमें एक गभरू जवान खुले गलेसे 'माहिया' गा रहा था :

"बोलण दी थां कोई नां ।
जिहड़ा सानूँ ला वे दित्ता,
उस रोग दा नां कोई नां ।"

माहियाकी लय बालोकी रग रगमें बसी हुई थी । बचपनमें गर्मियों की शामको जब वह और बच्चोंके साथ मिल कर रहटके पानीकी मोटी

धारके नीचे नाच-नाच कर नहाया करती थी, तब भी माहियाकी लय इसी तरह वातावरणमें मँडराया करती थी। साँझके झुटपुटे वातावरणके साथ उस लयका कुछ खास ही सम्बन्ध था। ज्यों-ज्यों वह बड़ी होती गयी, जीवनके साथ उस लयका सम्बन्ध गहरा होता गया। उनके गाँवका युवक लाली बड़ी लोचके साथ माहिया गाया करता था। उसने कितनी ही बार उसे गाँवके बाहर पीपलके पेड़के नीचे कान पर हाथ रख कर गाते सुना था। वह पुष्पा और पारोके साथ देर देर तक उस पीपलके पास खड़ी रहती थी। फिर एक दिन आया जब उसकी माँ कहने लगी कि वह अब मुटियार हो गयी है इसलिए अब उसे इस तरह देर देर तक पीपलके पास नहीं खड़ी रहना चाहिए। उन्हीं दिनों उसकी सगाईकी चर्चा होने लगी। जिस दिन सुच्चा सिंहके साथ उसकी सगाई हुई उस दिन पारो आधी रात तक ढोलकके साथ गीत गाती रही। गाते-गाते पारोका गला बुरी तरह थक गया था फिर भी वह ढोलक बजाना छोड़ कर उसे बाँहोंमें लपेटे हुए गाती रही :

"बीबी, चंनण दे ओहले ओहले किऊँ खड़ी
नीं लाडो किऊँ खड़ी ?
मैं ताँ खड़ी साँ बाबल जी दे बार,
मै कंनिआ कँवार,
बाबल वर लोड़िए।
नीं जाइए, किहो जिहा वर लोड़िए ?
जिऊँ-तारिआँ विचों चंद,
चंदां विचों नंद,
नंदां विचों कान्ह कन्हैया वर लोड़िए..."

वह नहीं जानती थी कि उसका वर कौन है, कैसा है, फिर भी उस का मन कहता था कि उसका वर वैसा ही सुन्दर होगा जैसा कि गीतकी कड़ियाँ सुन कर आँखोंके सामने आता है। सुहागरातको जब सुच्चा सिंह

ने उसके चेहरेसे घूँघट हटाया तो उसे देख कर उसे लगा कि वह सचमुच अपनी कल्पनाका कान्ह कन्हैया वर पा गयी है । जब सुच्चा सिंहने उसकी ठोड़ीको उठाया तो न जाने कितनी लहरें उसके सिरसे उठ कर शरीरमेंसे होती हुई पैरोंके नाखूनोंमें जा समायी । वह स्पर्श चाँद और चन्दनके स्पर्श से कहीं अधिक ठंडा और सिहरा देने वाला था । उसे लगा कि ज़िंदगी न जाने ऐसी कितनी सिहरनोंसे भरी हुई है, जिन्हे वह अब रोज़-रोज़ अनुभव करेगी और अपनी यादमें सँजों कर रखती जायगी ।

"तू हीरेकी कणी है हीरेकी कणी, "सुच्चा सिंहने उसे बाँहोंमें भर कर कहा ।

उसका मन हुआ कि कहे कि यह हीरेकी कणी तेरे पैरकी धूलके बराबर भी नहीं है, मगर वह शरमा कर चुप रह गयी. . .

"माई, अँधेरा हो रहा है, अब घर जा । यहाँ खड़ी खड़ी क्या कर रही है ?" प्याऊ वालेने चलते चलते उसके पास रुक कर कहा ।

"वीरा, यह बस जालंधरसे कब तक लौट कर आयगी ?" बालोने जैसे जाग कर अपनी स्थितिकी व्याख्या करते हुए पूछा ।

"क्या पता कब आये ? तू उतनी देर खड़ी रहेगी ?"

"वीरा, रोटी जो देनी है ।"

"उसे रोटी लेनी होती तो इस वार न ले लेता ? उसका तो दिमाग़ आसमान पर चढ़ा हुआ है ।"

"वीरा, मर्द कभी नाराज़ हो ही जाता है । ऐसी क्या बात है ?"

"अच्छा खड़ी रह तेरी मर्ज़ी । बस आठ नौ से पहले क्या आयगी ?"

"चल, जब भी आवे ।"

प्याऊ वालेसे बात करके वह निश्चय अपने आप ही हो गया जो वह अभी तक नहीं कर पायी थी । उसे बसके जालंधरसे लौटने तक रुकी रहना चाहिए । जिंदा थोड़ी देर डर लेगी तो क्या हुआ । जंगीकी अब दोबारा कुछ कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ेगी । आख़िर गाँवकी पंचायत भी तो कोई

चीज़ है। वह पंचों तक मामला पहुँचा कर उसे गाँवसे बाहर निकलवा सकती है। दूसरेकी बहन बेटी पर बुरी नजर रखना मामूली बात है? सुच्चा सिंहको पता चले तो वह उसे केसोंसे पकड़ कर मैदानमें घसीट लाये।... मगर सुच्चा सिंहको बात न बताना ही ठीक है। क्या पता ख़ामख़ाह सिर-फुटव्वल हो जाय? सुच्चा सिंह पहले ही घरके झंझटोंसे घबराता है, उसे और झंझटोंमें डालना ठीक नहीं। अच्छा ही हुआ जो उस वक़्त सुच्चा सिंहने उसकी बात नहीं सुनी। वह कहता था कि मै मंगलवारको घर नही आऊँगा। अगर वह सचमुच नही आया तो? और अगर उसने घर आना बिल्कुल ही छोड़ दिया? नहीं, वह उसे कभी कोई परेशानी की ख़बर नही देगी। सुच्चा सिंह ख़ुश रहे, घरको वह ख़ुद सँभाल सकती है। सुच्चा सिंहके साथ ही तो घरकी बरकत है। वह आता रहे तो घरमें सब कुछ है और वह न आये तो...

बालो ज़रा सिहर गयी। गाँवका लोटू सिंह अपनी बीवीको छोड़ कर भाग गया था। उसके पीछे वह टुकड़े टुकड़ेको तरस गयी थी। अंत में उसने कुएँमें छलांग लगा कर आत्महत्या कर ली थी। पानीसे फूल कर उसकी देह कितनी भयानक हो गयी थी?

बालोको थकान महसूस हो रही थी इसलिए वह प्याऊके तख़्ते पर जाकर उकड़ू हो कर बैठ गयी। अँधेरा होनेके साथ साथ खेतोंकी हलचल फिर शान्त होती जा रही थी। माहियाके गीतका स्थान अब झींगुरोंके गीतने ले लिया था। एक बस जालंधरकी तरफ़से और एक बस नकोदर की तरफ़से आकर निकल गयी। सुच्चा सिंह जालंधरसे आखिरी बस लेकर आता था। उसने पिछली बसके ड्राइवरसे पता कर लिया था कि अब जालंधरसे एक ही बस आनी है। अब जिस बसकी बत्तियाँ दिखायी देंगी वह सुच्चा सिंहकी ही बस होगी। थकानके मारे उसकी आँखें मुँदी जा रही थीं। वह बार-बार चेष्टासे आँखें खोल कर उन्हें दूर तकके अँधेरे और उन काली-काली छायाओं पर केंद्रित करती थी जो धीरे-धीरे गहरी

होती जा रही थीं । जरा-सी भी आवाज़ होती तो उसे भ्रम होता कि बस आ रही है और वह सावधान हो जाती । परन्तु बत्तियोंकी रोशनी न देख कर ठंडी साँस भर कर फिर शिथिल हो रहती । दो एक बार वह मुदी हुई आँखोंसे जैसे बसकी बत्तियाँ आती देख कर चौक उठी--मगर बस अभी नही आ रही थी । फिर वह देखने लगी कि कोई ज़ोर ज़ोरसे घरके किवाड़ खटखटा रहा है । जिंदा अंदर सहम कर बैठी हुई है । उसका चेहरा हल्दीकी तरह पीला हो रहा है और वह कह रही है बहन तू मत जा, तू मुझे छोड़ कर मत जा ।...रहटके बैल लगातार घूम रहे हैं, उनकी घंटियोंकी आवाज़ आ रही है और पीपलके पेड़के नीचे बैठा एक युवक कान पर हाथ रखे माहिया गा रहा है ।...ज़ोरकी धूल उड़ रही है जो धरती और आकाश की हर चीज़को लीलती जा रही है । वह अपनी रोटी वाली पोटलीको सँभालनेकी चेष्टा कर रही है पर वह उसके हाथसे निकलती जा रही है ।... प्याऊ पर सूखे मटके रखे है जिनमें बूंद भर भी पानी नहीं है । वह बार-बार लोटा मटकोंमें डालती है पर उन्हें खाली पा कर निराश हो जाती है।... उसके पैरोमे बिवाइयाँ फूट रही है । वह हाथकी उँगलीसे उन पर तेल लगाती है पर लगाते लगाते ही तेल सूख जाता है ।...जिंदा अपने खुले बाल घुटनो पर डाले रो रही है और कह रही है, "मुझे छोड़ कर क्यो गयी थी ? क्यों गयी थी छोड़ कर ? हाय मेरी चोटी, हाय मेरी चोटी..."

सहसा कंधे पर एक हाथके स्पर्शसे वह चौंक गयी ।

"सुच्चा स्यां !" उसने जल्दीसे मुँदी हुई पलकोंको मल लिया ।

"अभी घर नहीं गयी ?" सुच्चा सिह उसके पास ही तख्ते पर बैठ गया । बस ठीक प्याऊके सामने ही खड़ी थी । उस समय उसमें एक भी सवारी नही थी । केवल कण्डक्टर पीछेकी सीट पर आँख मूँद कर बैठा था ।

"मैंने कहा कि रोटी देकर ही घर जाऊँगी ।...बैठे बैठे झपकी आ गयी । हाय, तुझे बहुत देर तो नही हो गयी ?"

"नहीं बस अभी खड़ी ही की है । मैंने तुझे दूरसे ही देख लिया था । तू इतनी पागल है कि तब से अब तक रोटी देनेके लिए बैठी है ?"

"क्या करती ? तू जो कह गया था कि मैं घर नहीं आऊँगा !" और उसने पलकें झपक कर उमड़ते हुए आँसुओंको सुखा देनेकी चेष्टा की ।

"अच्छा ला रोटी, अब घर जा ! जिदां अकेली डर रही होगी ।" सुच्चा सिंहने उसकी बाँह थपथपा कर कहा और उठ खड़ा हुआ ।

झपकी आ जानेसे कटोरा बालोके हाथसे नीचे सरक गया था । उसने उसे उठाया तो उसे वह काफ़ी हल्का लगा । उसने देखा कि कटोरेमें रोटी साग कुछ भी नहीं है । तख्तेके नीचे कुत्ता निश्चिंत हो कर गुर्रा रहा था ।

"हाय मुए !" बालो जल्दीसे तख्तेसे उठी ।

"कुत्ता खा गया ?" सुच्चा सिंह हँस कर बोला, "सत्त नाम सिरी वाह गुरू !"

बालोकी आँखोंमें फिर पानी आ गया । वह खाली कटोरेको छातीके साथ सटाये निरीह दृष्टिसे सुच्चा सिंहकी ओर देखती खड़ी रही ।

"चल अब खड़ी क्या है ?" सुच्चा सिंह उसकी पीठ पर हाथ रखे हुए बसकी ओर बढ़ने लगा । बालो अपराधिनी सी उसके साथ बसकी खिड़की तक पहुँच गयी । सुच्चा सिंह उचक कर अपनी सीट पर बैठ गया और बस स्टार्ट करने लगा तो वह डरती हुई सी बोली, "सुच्चा स्यां, तू मंगलवार को घर आयगा न ?"

"हाँ, तुझे शहरसे कुछ मँगवाना हो तो बता दे ।'

"नहीं, मँगवाना कुछ नहीं ।"

बस चलनेके लिए घरघराने लगी तो वह दो क़दम पीछे हट गयी । सुच्चा सिंहने दाढ़ी मूँछ पर हाथ फेरा, एक डकार लिया, और उसकी ओर मुड़ कर पूछा, "तू उस वक़्त जंगीकी क्या बात कहती थी ?"

"नहीं, कोई ख़ास बात नहीं थी । तू मंगलको घर आयगा ही..."

"अच्छा, अब जल्दी चली जा, देर न कर, एक मील बाट है..."

"सुच्चा स्यां, कल गुरपरबका दिन है, कल मैं तेरे लिए कड़ाह प्रशाद बना कर लाऊँगी..."

"अच्छा !"

और बस चल पड़ी। बालोके चारों ओर गर्द फैल गयी। उसने पल्लेसे आँखें पोंछ लीं और तब तक बसके पीछेकी लाल बत्तीको देखती रही जब तक वह आँखोंसे ओझल नहीं हो गयी।

●

सौदा

दिनके नौ बज रहे थे और हर रोज़की तरह पहलगामके बाज़ारमें चहलपहल आरम्भ हो गयी थी। लोग नाश्तेके बाद अपने-अपने होटलों और खैमोंसे तैयार हो कर आ रहे थे। कई पार्टियाँ बाज़ारमें एक सिरेसे दूसरे सिरे तक चहलक़दमी करती दिखायी देने लगी थीं। अल्सेशियन कुत्तेको लेकर घूमती हुई चेकोस्लोवाकियाकी भद्र महिलासे लेकर सान फ्रांसिस्कोके तरुण दंपति तक, और सिंधी डाक्टरकी लड़कियोंसे लेक तिरुचिरापल्लीके विद्यार्थियों तक हर एकका चलनेका अंदाज़ कुछ ऐस था जैसे वह वहाँ दिग्विजय करनेके लिए आया हो। कुछ सुन्दर छरह शरीर, दो चार याद रखने वाले चेहरे, कहीं एक अच्छी मुसकराहट य चुभ जाने वाली मुद्रा...वर्ना केवल वस्त्र, काले चश्मे और कैमरे! द एक ऐसे भी चेहरे दिखायी दे रहे थे जिनकी बदसूरतीको शायद घंटोंक मेहनतसे निखारा गया था। दो प्रौढ़ व्यक्ति अपने तरुण मित्रोंके समुदाय खड़े होकर शोर मचाते हुए लोगोंको अपने युवा होनेका प्रमाण देनेकी चेष्ट कर रहे थे। और इस वातावरणमें घिरा हुआ एक व्यक्ति जिसकी वेशभूष से प्रकट था कि वह अमृतसरका लाला है, अपनी पत्नी और बच्चेके सा एक ओर खड़ा था। वह बहुत सँवार सँवार कर चाक़ूसे एक सेवके टुक काट रहा था और उनके हाथमें देता जा रहा था। उन लोगोंके पास एक दरी, एक सेबों की टोकरी और एक रोटीका डिब्बा रखा था।

पहले पुलकी तरफ़से कुछ घोड़ेवाले घोड़ोंकी लगामें थामे हुए आ र थे। घोड़ोंकी उजली सज्जाके साथ उनके मैले फटे हुए वस्त्रोंकी तुलन करनेसे लगता था कि वे घोड़ोंके मालिक नहीं, घोड़े उनके मालिक है। लोग आज बहुत धीरे-धीरे बाज़ारकी ओर आ रहे थे, जो कि उनके स्वभा

के विरुद्ध था। अक्सर उनमें जो जल्दबाज़ी दिखायी दिया करती थी वह आज नहीं थी।

घोड़ेवालोंके बाज़ारमें पहुँचते ही बाज़ारकी हलचल बढ़ गयी। बहुत से लोग उन्हें घेर कर आदेशात्मक स्वरमें उनसे घोड़ोंकी माँग करने लगे।

"हतो, पाँच घोड़े लाओ, अच्छे जवान घोड़े चाहिएँ।"

"हतो, ये दोनों घोड़े हमारे साथ ले आओ, चंदनवाड़ी चलना है।"

"चल हतो, उधर वे मेम साहब घोड़ा माँग रही हैं।"

ज़्यादातर लोगोंको चन्दनवाड़ीके लिए घोड़े लेने थे। पहलगाम आने वाले लोग एक बार चन्दनवाड़ी तक घुड़सवारी अवश्य करते हैं हालाँकि चन्दन वाड़ीमें कोई ख़ास आकर्षण नहीं है और वह अमरनाथके रास्तेका एक साधारण पड़ाव है। पर क्योंकि वहाँ जानेका रिवाज है इसलिए लोग वहाँ गये बिना अपनी पहलगामकी यात्रा पूरी नही समझते।

उस लालाने भी निश्चिन्ततापूर्वक सेबका एक टुकड़ा चबाते हुए एक घोड़ेवालेको आदेश दिया, "तीन घोड़े इधर लाना भाई, अच्छे बढ़िया घोड़े हों।"

परन्तु घोड़ेवालेने उत्तरमें उपेक्षा-सी दिखलाते हुए कहा, "तीन घोड़ों के बारह रुपये होंगे।"

"सब घोड़े तीन तीन रुपयेमें जाते हैं", लालाने झिड़कते हुए कहा, "हम आज पहली बार नही जा रहे।"

यह छोटा सा झूठ उसकी व्यवहारबुद्धिने ही उससे बुलवा दिया, हालाँकि कुछ देर पहले जिस तरह एक व्यक्तिसे वह चन्दनवाड़ीके विषयमें पूछ रहा था उससे स्पष्ट था कि वह पहलगाममें अपने जीवनमें पहली बार आया है और शायद पिछली शामको ही आया है। उसी व्यक्तिसे उसे पता चला था कि घोड़ेवाले चन्दनवाड़ीके तीन तीन रुपये लेते हैं।

"चार रुपये सरकारी रेट है", घोड़ेवालेने घोड़ेकी ज़ीन ठीक करते हुए पहलेसे ही स्वरमें कहा, "चार रुपयेसे कममें आज कोई नहीं जायगा।"

"तू जा, अभी पचास मिल जायँगे' लालाने तिरस्कारके साथ कहा और दूसरे घोड़े वालेको आवाज़ दी ।

परन्तु सब घोड़ेवाले उस दिन चार चार रुपये ही माँग रहे थे । और लोग भी उनसे इसी बात पर झगड़ रहे थे । वही घोड़ेवाले जो रोज़ तीन तीन रुपयेमें चलनेके लिए लोगोंकी मिन्नतें किया करते थे और कई बार दो दो रुपयेमें भी चलनेको तैयार हो जाते थे, आज सीधे मुँह बात नहीं कर रहे थे । लोग कह रहे थे कि उन्होंने स्वयं ही घोड़ेवालोंके दिमाग़ आसमान पर चढ़ाये हैं, घोड़ेवाले उन्हें जरूरतमंद समझ कर नखरा दिखा रहे हैं । वे सब अगर निश्चय कर लें कि कोई घोड़ा नहीं लेगा तो अभी घोड़ेवाले उनकी खुशामद करेंगे और दो-दो रुपयेमें चलनेको तैयार हो जाएँगे ।

"आज बात क्या है ?" किसीने पूछा ।

"बात कुछ नहीं है", एक घोड़ेवालेने उत्तर दिया, "चार रुपये सरकारी रेट है !"

"पहले भी तो सरकारी रेट चार रुपये था. फिर पहले क्यों तीन रुपये लेते थे ?"

"यह तो मर्जीकी बात है साहब", एक जवान घोड़ेवालेने उत्तर दिया, "पहले मर्ज़ी थी लेते थे । आज मर्जी नहीं है, नहीं लेते ।"

पर धीरे-धीरे इधर-उधरकी चेहमेगोइयोंसे लोगोंको पता चल गया कि कल किसी बाबूने एक घोड़ेवालेको इस बात पर पीट दिया था कि वह उससे चन्दनवाड़ीके तीनकी बजाय चार रुपये माँग रहा था । इसीलिए सब घोड़ेवालोंने आज निश्चय किया था कि आजसे वे चार रुपयेसे कममें चन्दनवाड़ी नहीं जायँगे । रोज़की तरह मैले कपड़ोंमें लिपटे हुए भी वे आज ख़ास गर्वका अनुभव कर रहे थे । उनके रेखांकित चेहरोंका उल्लास प्रकट करते हुए उनके मैले दाँत बार बार दिखायी दे जाते थे ।

"थोड़ी देर इंतज़ार करो जी, ये लोग अभी रास्ते पर आ जायँगे", लालाने बढ़ कर आगे आते हुए कहा, "आज हम इन्हें चार-चार रुपये देंगे तो

कल ये लोगोंसे पाँच पाँच रुपये माँगेंगे । जो जायज़ है वही होना चाहिए । इन्हें जाने दीजिए । अभी और घोड़ेवाले आ जाएँगे ।"

खालसा होटलका नौकर आवाज़ दे रहा था कि होटलमें अठारह घोड़े चाहिएँ, इसलिए वे सब घोड़ेवाले खालसा होटलकी तरफ़ चल दिये । इस पर कुछ लोगोंने तुरन्त परिस्थितिसे समझौता कर लिया और चार चार रुपयेमें अपने लिए घोड़े ठहरा लिये । लाला और कुछ अन्य लोगोंने असन्तोष प्रकट किया कि वे लोग खामखाह घबरा कर अपनेको घोड़ेवालोंके सामने हीन कर रहे हैं । पर जिन्होंने घोड़े ले लिये थे, वे चुपचाप उन पर सवार होकर चल दिये । लालाके साथ केवल तिरुचिरापल्लीके विद्यार्थी और एक बंगाली परिवार रह गया । लाला कुछ देर उन्हें अपना दृष्टिकोण समझाता रहा, फिर अपने परिवारके पास आ गया ।

क्योंकि उस स्थान पर काफ़ी बकझक हो चुकी थी, इसलिए वह अपनी पत्नी और बच्चेको साथ लिये हुए पुलकी दिशामें चल दिया । उधरसे और बहुतसे घोड़ेवाले आ रहे थे । उसने उनमेंसे तीन चारको रोक कर पूछा पर हर एकने चार रुपये ही माँगे । वह कुछ देर उस दिशामें चल कर फिर वापस लौट पड़ा । उसका बच्चा जो रास्तेके हर घोड़ेको उत्सुकतापूर्ण दृष्टिसे देखता था, चलते चलते ठोकरें खा रहा था । लाला आखिर निर्णयात्मक भावसे सड़कके बीच ठहर गया । पाससे गुज़रते हुए तीन घोड़ोंको उसने ठहरा लिया और एक घोड़ेवालेको आदेश दिया कि वह उसकी धर्मपत्नी को घोड़े पर बैठनेमें मदद दे । दूसरे घोड़े पर उसने बच्चेको बैठा दिया और तीसरे घोड़ेकी रकाबमें पाँव रख कर प्रतीक्षा करने लगा कि घोड़ेवाला आकर उसे शरीरको उछालनेमें सहायता दे ।

"लाला, कहाँ चलना है ?" घोड़ेवालेने उसे हाथका सहारा देते हुए पूछा ।

"चन्दनवाड़ी", लालाने घोड़े पर जम कर बैठते हुए कहा ।

"चार चार रुपये होंगे ।"

लालाने घोड़ेकी पीठ परसे विश्वविजयीकी तरह एक दृष्टि चारों ओर डाली और घोड़ेवालेकी बातको महत्व न देकर कहा, "बताओ, लगाम किस तरह पकड़नी है ?"

घोड़ेवालेने लगाम उसके हाथमें दे दी और कहा, "साथ आठ आठ आने बख़्शीशके मिल जायँ ।"

"जो मुनासिब पैसे हैं, मिल जायँगे", लालाने कहा, "हम किसीका हक़ नहीं रखते ।" और उसने लगामको ज़रा-सा झटका दिया । पर उससे घोड़ा आगे चलनेकी बजाय पीछेकी ओर घूम गया ।

"लाला, यह ऐसे नहीं चलेगा", घोड़ेवाला हँस कर बोला, "तुम पैसेकी बात करो, यह अभी दौड़ने लगेगा ।"

"तुमसे कह दिया है कि ठीक पैसे दे देंगे ।"

"चार चार रुपया भाड़ा और आठ आठ आना बख़्शीश ।"

"तीन तीन रुपया भाड़ा और चार चार आना..."

"तो उतर जाओ लाला," घोड़ेवालेने बीचमें ही कहा, "तीन रुपयेमें कोई घोड़ा नहीं जायगा ।"

"कैसे नही जायगा ?" लाला आवेशके साथ बोला, "जब रोज़ जाता है तो आज भी जायगा ।"

"नहीं जायगा साहब, आज नहीं जायगा ।"

"तो हम भी घोड़ेसे नहीं उतरेंगे, खड़े रहो जितनी देर खड़े रहना है !" और वह पंजाबीकी गालियाँ मिलाकर ऐसी हिन्दी बोलने लगा जिसमें विशुद्ध भाव ही भाव था, कलाका अंश तक नहीं था । और तभी न जाने क्या हुआ कि उसकी पत्नीका घोड़ा बिदक कर सरपट दौड़ उठा । उस बेचारीने बहुत सँभलनेकी कोशिश की पर कुछ गज़ जाते न जाते वह बिल्कुल गिरनेको हो गयी । घोड़ेवालेने भाग कर वक़्त पर घोड़ेको रोक लिया ।

लाला ऐसी स्थितिमें था कि वह बिना घोड़ेवालेकी सहायताके उतर भी नहीं सकता था । उसने एक पैर रकाबसे निकाल लिया, पर उसे ज़मीन

तक पहुँचानेकी चेष्टामें उसका दूसरा पैर उलझ गया। घोड़ेवालेने उसे सहारा दे कर उतार दिया। तब तक उसकी पत्नी भी किसी तरह सँभल कर उतर गयी थी। लालाने उतर कर बच्चेको उतारा और फिर उसी भाषा में अपने उद्‌गार प्रकट करने लगा। घोड़ेवाले वहाँसे चले गये, क्योंकि दूर कोई उन्हें हाथके इशारेसे बुला रहा था।

बंगाली परिवार और तिरुचिरापल्लीके विद्यार्थी भी अब घोड़ों पर सवार हो कर आ रहे थे। और भी कितने ही गिरोह चन्दनवाड़ीकी दिशा में जा रहे थे। कुछ युवतियाँ और युवक तेज़ीसे घोड़ोंको दौड़ाते हुए निकल गये। बच्चा चकित दृष्टिसे उन्हें दूर तक जाते देखता रहा।

लालाकी पत्नीने उससे कहा कि यदि चलना हो तो उन्हें भी और लोगों की तरह चुपचाप चार चार रुपयेमें घोड़े ले लेने चाहिएँ। लालाने जैसे आत्मसमर्पण करते हुए उसकी बात मान कर एक घोड़ेवालेको आवाज़ दी कि वह उनके लिए तीन घोड़े ले आये।

मगर घोड़ेवालेने दूरसे ही कहा, "नही साहब, घोड़ा ख़ाली नही है।"

एक और पासमे निकलता हुआ घोड़ेवाला भी यही कहकर चला गया कि घोड़ा ख़ाली नहीं है। तीसरेने यह उत्तर देना भी मुनासिब नहीं समझा। आखिर एक घोड़ेवालेने रुककर कहा, "चार रुपया भाड़ा और एक रुपया बख़्शीश मिलेगा?"

"भाड़ा तुम्हें रेटके मुताबिक देंगे," लालाने खिसियाने स्वरमें कहा, "बख़्शीश हमारी मर्ज़ीपर है।"

"नहीं साहब," घोड़ेवाला बोला, "बख़्शीश भी पहले तय होना चाहिए। उधर एक और साहब घोड़ा माँग रहा है। वह एक-एक रुपया बख़्शीश देता है।"

और इससे पहले कि लाला निश्चय कर पाता कि बख़्शीशकी स्वीकृति दे या नहीं, एक और घोड़ेवालेने उस घोड़ेवालेंको बुला लिया। वह एक यूरोपियन परिवारके लिए सात घोड़े इकट्ठे कर रहा था। लालाने पत्नी

और बच्चेको वहीं छोड़कर स्वयं बाज़ारका एक पूरा चक्कर लगाया। पर घोड़े सभी जा चुके थे। सहसा उसकी दृष्टि एक घोड़ेवाले पर पड़ी जो क्लबकी तरफ़ घोड़ा लिये बाज़ारकी ओर जा रहा था। वह रुककर उसकी प्रतीक्षा करने लगा। घोड़ा और घोड़ेवाला बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे और लगता था कि दोनों बीमार हैं। पास पहुँचनेपर लालाने घोड़ेवालेसे पूछा कि वह चन्दनवाड़ी चलनेका क्या लेगा।

"चार रुपया," घोड़ेवालेने खाँस कर उत्तर दिया।

उसने साथ बख़्शीशकी माँग नहीं की इससे लालाके चेहरे पर प्रसन्नता की हल्की-सी लहर दौड़ गयी। उसने घोड़ेवालेसे कहा कि वह तुरन्त दो घोड़े और ले आये।

"और घोड़ा आप देख लीजिये, मेरे पास एक ही घोड़ा है," घोड़ेवाला बोला, "रखना हो तो बताइये, नहीं तो मैं उधरसे एक मेमके बच्चोंको घुमानेके लिए ले जाऊँगा।"

"तू मेरे साथ रह, अभी दो घोड़े और मिल जायँगे, लालाने कहा, और उसे साथ लिये हुए वहाँ आ गया जहाँ उसकी पत्नी खड़ी थी। वहाँ आकर उसने आत्मश्लाघात्मक ढंगसे पत्नीको बतलाया कि किसतरह अब वग़ैर बख़्शीशके झगड़ेके चार-चार रुपयेमें घोड़े मिल रहे हैं और थोड़ी देरतक शायद इससे भी कममें मिलने लगें। उसके बाद वह पत्नी और बच्चोंको साथ लिये हुए घोड़ोंकी तलाशमें बाजारमें चक्कर लगाने लगा। बच्चा रोटीका डिब्बा उठाये था, पत्नी सेबोंकी टोकरी हाथमें लिये थी और वह स्वयं दरी बगलमें सँभाले था। घोड़ेवाला उनके पीछे-पीछे घोड़ेकी लगाम सँभाले खाँसता हुआ चल रहा था। बहुत देरतक वे इस तरह बाजारके चक्कर लगाते रहे, पर कहीं कोई दूसरा घोड़ा दिखायी नहीं दे रहा था।

—×—

मलबेका मालिक

पूरे साढ़े सात सालके बाद वे लोग लाहौरसे अमृतसर आये थे। हाकीका मैच देखनेका तो बहाना ही था, उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाज़ारोंको फिरसे देखनेको जो था, साढ़ेसात साल पहले उनके लिए पराये हो गये थे। हर सड़कपर मुसलमानोंकी कोई-न-कोई टोली घूमती नज़र आ जाती थी। उनकी आँखें इस आग्रहके साथ वहाँकी हर चीज़को देख रही थीं, जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक ख़ास आकर्षण-केन्द्र हो।

तंग बाज़ारोंमें से गुजरते हुए वे एक-दूसरेको पुरानी चीज़ोंकी याद दिला रहे थे... देख, फ़तहदीना, मिसरी बाज़ारमें अब मिसरीकी दुकानें पहलेसे कितनी कम रह गयी हैं !..... उस नुक्कड़पर भठियारिनकी भट्ठी थी, जहाँ अब यह पानवाला बैठा है।... यह नमकमण्डी देख लो, खानसाहब ! यहाँकी एक-एक लालाइन वह नमकीन होती हैं कि बस...

बहुत दिनोंके बाद बाज़ारोंमें तुर्रेदार पगड़ियाँ और लाल तुर्की टोपियाँ दिखायी दे रही थीं। लाहौरसे आये हुए मुसलमानोंमें काफ़ी संख्या ऐसे लोगोंकी थी, जिन्हें विभाजनके समय मजबूर होकर अमृतसर छोड़कर जाना पड़ा था। साढ़े सात सालमें आये अनिवार्य परिवर्तनोंको देखकर कहीं उनकी आँखोंमें हैरानी भर जाती और कहीं अफ़सोस घिर आता—वल्लाह। कटरा जयमलसिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया ? क्या इस तरफ़के सब-के-सब मकान जल गये ?... यहाँ हकीम आसिफ़अलीकी दुकान थी न ? अब यहाँ एक मोचीने कब्ज़ा कर रखा है !

और कहीं-कहीं ऐसे भी वाक्य सुनायी दे जाते—वली, यह मस्जिद ज्यों-की-त्यों खड़ी है ? इन लोगोंने इसका गुरुद्वारा नहीं बना दिया ?

जिस रास्तेसे भी पाकिस्तानियोंकी टोली गुज़रती, शहरके लोग उत्सुकतापूर्वक उसकी ओर देखते रहते । कुछ लोग अब भी मुसलमानोंको आते देखकर शंकित-से रास्तेसे हट जाते थे, जबकि दूसरे आगे बढ़कर उनसे बग़लगीर होने लगते थे । ज़्यादातर वे आगन्तुकोंसे ऐसे-ऐसे सवाल पूछते थे कि आजकल लाहौरका क्या हाल है ? अनारकलीमें अब पहले जितनी रौनक़ होती है या नहीं ? सुना है, शाहालमीगेटका बाज़ार पूरा नया बना है ? कृष्णनगरमें तो कोई ख़ास तब्दीली नहीं आयी ? वहाँका रिश्वतपुरा क्या वाक़ई रिश्वतके पैसेसे बना है ? कहते हैं, पाकिस्तानमें अब बुर्का बिल्कुल उड़ गया है, यह ठीक है ?...इन सवालोंमें इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता था कि लाहौर एक शहर नही, हज़ारों लोगोंका सगा सम्बन्धी है, जिसके हालात जाननेके लिए वे उत्सुक हैं । लाहौरसे आये हुए लोग उस दिन शहर-भरके मेहमान थे, जिनसे मिलकर और बातें करके लोगोंको ख़ामख़ाह ख़ुशीका अनुभव होता था ।

बाज़ार बाँसाँ अमृतसरका एक उपेक्षित-सा बाज़ार है, जो विभाजन से पहले ग़रीब मुसलमानोंकी बस्ती थी । वहाँ ज़्यादातर बाँस और शहतीरों की ही दुकानें थीं, जो सबकी-सब एक ही आगमें जल गयी थीं । बाज़ार-बाँसाँकी आग अमृतसरकी सबसे भयानक आग थी, जिससे कुछ देरके लिए तो सारे शहरके जल जानेका अंदेशा पैदा हो गया था । बाज़ार बाँसाँके आस-पासके कई मुहल्लोंको तो उस आगने अपनी लपटमें ले ही लिया था । ख़ैर, किसी तरह वह आग क़ाबूमें आ तो गयी, पर उसमें मुसलमानोंके एक एक घरके साथ हिन्दुओंके भी चार-चार, छह-छह घर जलकर राख हो गये । अब साढ़े सात सालमें उनमेंसे कई इमारतें तो फिरसे खड़ी हो गयी थीं, मगर जगह-जगह मलबेके ढेर अब भी मौजूद थे । नयी इमारतोंके बीच-बीचमें मलबेके ढेर अजीब ही वातावरण प्रस्तुत करते थे ।

बाज़ार बाँसाँमें उस दिन भी चहल-पहल नहीं थी, क्योंकि उस बाज़ार के ज़्यादातर बाशिन्दे तो अपने मकानोंके साथ ही शहीद हो गये थे और

जो बचकर चले गये थे, उनमें शायद लौटकर आनेकी हिम्मत बाक़ी नहीं रही थी। सिर्फ़ एक दुबला-पतला बुड्ढा मुसलमान ही उस वीरान बाज़ार में आया और वहाँकी नयी और जली हुई इमारतोंको देखकर जैसे भूलभुलैया में पड़ गया। बायें हाथको जानेवाली गलीके पास पहुँचकर उसके क़दम अंदर मुड़नेको हुए, मगर फिर वह हिचकिचाकर वहाँ बाहर ही खड़ा रह गया, जैसे उसे निश्चय नही हुआ कि वह वही गली है या नहीं, जिसमें वह जाना चाहता है। गलीमें एक तरफ़ कुछ बच्चे कीड़ी-काड़ा खेल रहे थे और कुछ अंतर पर दो स्त्रियाँ ऊँची आवाज़में चीख़ती हुई एक दूसरीको गालियाँ दे रही थीं।

"सब कुछ बदल गया, मगर बोलियाँ नहीं बदलीं!" बुड्ढे मुसलमान ने धीमे स्वरमें अपनेसे कहा और छड़ीका सहारा लिये खड़ा रहा। उसके घुटने पाजामेसे बाहरको निकल रहे थे और घुटनोंके थोड़ा ऊपर ही उसकी शेरवानीमें तीन-चार पैबन्द लगे थे। गलीसे एक बच्चा रोता हुआ बाहर को आ रहा था। उसने उसे पुचकारकर पुकारा, "इधर आ, बेटे, आ इधर! देख, तुझे चिज्जी देंगे, आ!" और वह अपनी जेबमें हाथ डाल कर उसे देनेके लिए कोई चीज़ ढूँढ़ने लगा। बच्चा क्षणभरके लिए चुप कर गया, लेकिन फिर उसने ओंठ बिसोर लिये और रोने लगा। एक सोलह सत्रह बरसकी लड़की गलीके अंदरसे दौड़ती हुई आयी और बच्चेकी बाँह पकड़कर उसे घसीटती हुई गलीमें ले चली। बच्चा रोनेके साथ-साथ अपनी बाँह छुड़ानेके लिए मचलने लगा। लड़कीने उसे बाँहोंमें उठाकर अपने साथ चिपका लिया और उसका मुँह चूमती हुई बोली, "चुप कर, मेरा वीर! रोयेगा तो तुझे वह मुसलमान पकड़कर ले जायगा, मैं वारी जाऊँ, चुप कर!"

बुड्ढे मुसलमानने बच्चेको देनेके लिए जो पैसा निकाला था, वह वापस जेबमें रख लिया। सिरसे टोपी उतार कर उसने वहाँ थोड़ा खुजलाया और टोपी बग़लमें दबा ली। उसका गला ख़ुश्क हो रहा था और घुटने

ज़रा ज़रा काँप रहे थे । उसने गलीके बाहरकी बंद दुकानके तख़्तेका सहारा ले लिया और टोपी फिरसे सिर पर लगा ली । गलीके सामने जहाँ पहले ऊँचे-ऊँचे शहतीर रखे रहते थे, वहाँ अब एक तिमंज़िला मकान खड़ा था । सामने बिजलीके तार पर दो मोटी-मोटी चीलें बिल्कुल जड़ होकर बैठी थीं । बिजलीके खंभेके पास थोड़ी धूप थी । वह कई पल धूपमें उड़ते हुए ज़रोंको देखता रहा । फिर उसके मुँहसे निकला, "या मालिक !"

एक नवयुवक चाबियोंका गुच्छा घुमाता हुआ गलीकी ओर आया और बुड्ढेको वहाँ खड़े देखकर उसने रुककर पूछा, "कहिए, मियाँ जी, यहाँ किस तरह खड़े हैं ?"

बुड्ढे मुसलमानकी छाती और बाहोंमें हल्की-सी कँपकँपी हुई और उसने ओठों पर ज़बान फेरकर नवयुवकको ध्यानसे देखते हुए पूछा, "बेटे, तेरा नाम मनोरी नहीं है ?"

नवयुवकने चाबियोंका गुच्छा हिलाना बंद करके मुट्ठीमें ले लिया और आश्चर्यके साथ पूछा, "आपको मेरा नाम कैसे पता है ?"

"साढ़े सात साल पहले तू बेटे इतना-सा था," कहकर बुड्ढेने मुसकराने की कोशिश की ।

"आप आज पाकिस्तानसे आये हैं ?" मनोरीने पूछा ।

"हाँ, मगर पहले हम इसी गलीमें रहते थे", बुड्ढेने कहा, "मेरा लड़का चिराग़दीन तुम लोगोका दर्ज़ी था । तक़सीमसे छह महीने पहले हम लोगों ने यहाँ अपना नया मकान बनाया था ।"

"ओ, ग़नी मियाँ !" मनोरीने पहचानकर कहा ।

"हाँ, बेटे, मै तुम लोगोंका ग़नी मियाँ हूँ ! चिराग़ और उसके बीबी-बच्चे तो नही मिल सकते, मगर मैंने कहा कि एक बार मकानकी सूरत ही देख लूँ !" और उसने टोपी उतारकर सिर पर हाथ फेरते हुए आँसुओंको बहनेसे रोक लिया ।

"आप तो शायद काफ़ी पहले ही यहाँसे चले गये थे", मनोरीने स्वरमें संवेदना लाकर कहा ।

"हाँ, बेटे, मेरी बदबख़्ती थी कि पहले अकेला निकलकर चला गया। यहाँ रहता, तो उनके साथ मैं भी..." और कहते-कहते उसे अहसास हो आया कि उसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। उसने बात मुँहमें रोक ली, मगर आँखमें आये हुए आँसुओंको बह जाने दिया।

"छोड़िए, ग़नी साहब, अब बीती बातोंको सोचनेमें क्या रखा है?" मनोरीने ग़नीकी बाँह पकड़कर कहा, 'आइए, आपको आपका घर दिखा दूँ?'

गलीमें ख़बर इस रूपमें फैली थी कि गलीके बाहर एक मुसलमान खड़ा है, जो रामदासीके लड़केको उठाने जा रहा था...उसकी बहन उसे पकड़कर घसीट लायी, नही तो वह मुसलमान उसे ले गया होता। यह ख़बर पाते ही जो स्त्रियाँ गलीमें पीढ़े बिछाकर बैठी थी, वे अपने-अपने पीढ़े उठाकर घरोके अन्दर चली गयीं। गलीमें खेलते हुए बच्चोंको भी उन स्त्रियोंने पुकार-पुकार कर घरोंमें बुला लिया। मनोरी जब ग़नीको लेकर गलीमें आया, तो गलीमें एक फेरीवाला रह गया था या कुएँके साथ उगे हुए पीपल के नीचे रक्खा पहलवान बिखरकर सोया। घरोंकी खिड़कियोंमेंसे और किवाड़ोंके पीछेसे अलबत्ता कई चेहरे झाँक रहे थे। ग़नीको गलीमें आते देखकर उनमें हल्की-हल्की चेहमेगोइयाँ शुरू हो गयीं। दाढ़ीके सब बाल सफ़ेद हो जानेके बावजूद लोगोंने चिराग़दीनके बाप अब्दुल ग़नीको पहचान लिया था।

"वह आपका मकान था", मनोरीने दूरसे एक मलबेकी ओर संकेत किया। ग़नी पल-भरके लिए ठिठक कर फटी-फटी आँखोंसे उसकी ओर देखता रहा। चिराग़ और उसके बीबी-बच्चोंकी मौतको वह काफ़ी अर्सा पहले स्वीकार कर चुका था, मगर अपने नये मकानको इस रूपमें देखकर उसे जो झुनझुनी हुई, उसके लिए वह तैयार नहीं था। उसकी ज़बान पहले से ज्यादा खुश्क हो गयी और घुटने भी और ज्यादा काँपने लगे।

"वह मलबा?" उसने अविश्वासके स्वरमें पूछा।

मनोरीने उसके चेहरेका बदला हुआ रंग देखा। उसने उसकी बाँहको और सहारा देकर ठहरे हुए स्वरमें उत्तर दिया, "आपका मकान उन्हीं दिनों जल गया था।"

ग़नी छड़ीका सहारा लेता हुआ किसी तरह मलबेके पास पहुँच गया। मलबेमें अब मिट्टी-ही-मिट्टी थी, जिसमें जहाँ-तहाँ टूटी और जली हुई ईंटें फँसी थीं। लोहे और लकड़ीका सामान उसमेंसे न जाने कबका निकाल लिया गया था। केवल जले हुए दरवाज़ेका चौखट न जाने कैसे बचा रह गया था, जो मलबेमेंसे बाहरको निकला हुआ था। पीछेकी ओर दो जली हुई अलमारियाँ और बाक़ी थीं, जिनकी कालिख पर अब सफ़ेदीकी हल्की-हल्की तह उभर आयी थी। मलबेको पाससे देखकर ग़नीने कहा, "यह रह गया है, यह ?" और जैसे उसके घुटने जवाब दे गये और वह जले हुए चौखटको पकड़कर बैठ गया। क्षण-भर बाद उसका सिर भी चौखटसे जा लगा और उसके मुंहसे बिलखने की-सी आवाज़ निकली, "हाए! ओए चिराग़दीना!"

जले हुए किवाड़का चौखट साढ़े सात साल मलबेमेंसे सिर निकाले खड़ा तो रहा था, मगर उसकी लकड़ी बुरी तरह भुरभुरा गयी थी। ग़नीके सिरके छूनेसे उसके कई रेशे झड़कर बिखर गये। कुछ रेशे ग़नीकी टोपी और बालों पर आ गिरे। लकड़ीके रेशोंके साथ एक केंचुआ भी नीचे गिरा, जो ग़नीके पैरसे छः-आठ इंच दूर नालीके साथ बनी ईंटोंकी पटरी पर सरसराने लगा। वह अपने लिए सूराख़ ढूँढ़ता हुआ ज़रा-सा सिर उठाता, मगर दो-एक बार सिर पटककर और निराश होकर दूसरी ओरको मुड़ जाता।

खिड़कियोंमेंसे झाँकनेवाले चेहरोंकी संख्या पहलेसे कहीं बढ़ गयी थी। उनमें चेहमेगोइयाँ चल रही थीं कि आज कुछ-न-कुछ ज़रूर होगा...चिराग़दीनका बाप ग़नी आ गया है, इसलिए साढ़े सात साल पहलेकी सारी घटना आज खुल जायगी। लोगोंको लग रहा था, जैसे वह मलबा ही ग़नीको सारी

कहानी सुना देगा कि शामके वक़्त चिराग़ ऊपरके कमरेमें खाना खा रहा था, जब रक्खे पहलवानने उसे नीचे बुलाया कि वह एक मिनिट आकर एक ज़रूरी बात सुन जाय...पहलवान उन दिनों गलीका बादशाह था। हिन्दुओं पर ही उसका काफ़ी दबदबा था, चिराग़ तो ख़ैर मुसलमान था। चिराग़ हाथका कौर बीचमें ही छोड़कर नीचे उतर आया। उसकी बीबी जुबैदा और दोनों लड़कियाँ किश्वर और सुलताना खिड़कियोंमेंसे नीचे झाँकने लगीं। चिराग़ने ड्योढ़ीसे बाहर क़दम रखा ही था कि पहलवान ने उसे कमीज़के कालरसे पकड़कर खींच लिया और उसे गलीमें गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। चिराग़ उसका छुरेवाला हाथ पकड़ कर चिल्लाया, "न, रक्खे पहलवान, मुझे मत मार! हाय! मुझे बचाओ! जुबैदा! मुझे बचा!" और ऊपर जुबैदा, किश्वर और सुलताना हताश स्वरमें चिल्लायीं। जुबैदा चीख़ती हुई नीचे ड्योढ़ीकी तरफ़ भागी। रक्खेके एक शागिर्दने चिराग़की जद्दोजहद करती हुई बाहें पकड़ लीं और रक्खा उसकी जाँघोंको घुटनोंसे दबाये हुए बोला, चीख़ता क्यों है, भैणके... तुझे पाकिस्तान दे रहा हूँ, ले!" और जुबैदाके नीचे पहुँचनेसे पहले ही उसने चिराग़को पाकिस्तान दे दिया।

आस-पासके घरोंकी खिड़कियाँ बंद हो गयी। जो लोग इस दृश्यके साक्षी थे, उन्होंने दरवाज़े बंद करके अपनेको इस घटनाके उत्तरदायित्वसे मुक्त कर लिया। बंद किवाड़ोंमें भी उन्हें देर तक जुबैदा, किश्वर और सुलतानाके चीख़नेकी आवाज़ें सुनायी देती रहीं। रक्खे पहलवान और उसके साथियोंने उन्हें भी उसी रात पाकिस्तान देकर बिदा कर दिया, मगर दूसरे तवील रास्तेसे। उनकी लाशें चिराग़के घरमें न मिलकर बादमें नहर के पानीमें पायी गयीं।

दो दिन तक चिराग़ के घरकी ख़ानातलाशी होती रही। जब उसका सारा सामान लूटा जा चुका, तो न जाने किसने उस घरको आग लगा दी। रक्खे पहलवानने क़सम खायी थी कि वह आग लगानेवालेको ज़िंदा ज़मीन

में गाड़ देगा, क्योंकि उसने उस मकान पर नज़र रखकर ही चिराग़को मारने का निश्चय किया था । उसने उस मकानको शुद्ध करनेके लिए हवन-सामग्री भी ख़रीद रखी थी । मगर आग लगानेवालेका पता ही नहीं चल सका, उसे ज़िंदा गाड़नेकी नौबत तो बादमें आती । अब साढ़े सात सालसे रक्खा पहलवान उस मलबेको अपनी जागीर समझता आ रहा था, जहाँ न वह किसीको गाय-भैंस बाँधने देता था और न खोंचा लगाने देता था । उस मलबेसे बिना उसकी अनुमतिके कोई ईंट भी नहीं उठा सकता था ।

लोग आशा कर रहे थे कि यह सारी कहानी जरूर किसी-न-किसी तरह ग़नीके कानों तक पहुँच जायगी. . .जैसे मलबेको देखकर उसे अपने-आप ही सारी घटनाका पता चल जायगा । और ग़नी मलबेकी मिट्टी नाख़ूनोंसे खोद-खोदकर अपने ऊपर डाल रहा था और दरवाजेके चौखटको बाँहमें लिये हुए रो रहा था, "बोल, चिराग़दीना, बोल ! तू कहाँ चला गया, ओए ? ओ किश्वर ! ओ सुलताना ! हाय मेरे बच्चे ओएऽऽ ! ग़नीको कहाँ छोड़ दिया, ओएऽऽऽ !"

और भुरभुरे किवाड़से लकड़ीके रेशे झड़ते जा रहे थे ।

पीपलके नीचे सोये हुए रक्खे पहलवानको जाने किसीने जगा दिया, या वह वैसे ही जाग गया । यह जानकर कि पाकिस्तानसे अब्दुलग़नी आया है और अपने मकानके मलबे पर बैठा है, उसके गलेमें थोड़ा झाग उठ आया, जिससे उसे खाँसी हो आयी और उसने कुएँके फ़र्श पर थूक दिया । मलबेकी ओर देखकर उसकी छातीसे धौकनी का-सा स्वर निकला और उसका निचला ओंठ थोड़ा बाहरको फैल आया ।

"ग़नी अपने मलबे पर बैठा है", उसके शागिर्द लच्छे पहलवानने उसके पास आकर बैठते हुए कहा ।

"मलबा उसका कैसे है ? मलबा हमारा है !" पहलवानने झागके कारण घरघरायी हुई आवाज़में कहा ।

"मगर वह वहाँ पर बैठा है", लच्छेने आँखोंमें रहस्यमय संकेत लाकर कहा ।

"बैठा है, बैठा रहे, तू चिलम ला !" उसकी टाँगें थोड़ी फैल गयीं और उसने अपनी नंगी जाँघों पर हाथ फेरा ।

"मनोरीने अगर उसे कुछ बताया-वताया, तो...?" लच्छेने चिलम भरनेके लिए उठते हुए उसी रहस्यपूर्ण दृष्टिसे देखकर कहा ।

"मनोरीकी शामत आयी है ?"

लच्छा चला गया ।

कुएँ पर पीपलकी कई पुरानी पत्तियाँ बिखरी थीं । रक्खा उन पत्तियोंको उठा-उठाकर हाथोंमें मसलता रहा । जब लच्छेने चिलमके नीचे कपड़ा लगाकर उसके हाथमें दिया, तो उसने कश खींचते हुए पूछा, "और तो किसीसे ग़नीकी बात नही हुई ?"

"नही ।"

"ले," और उसने खाँसते हुए चिलम लच्छेके हाथमें दे दी । लच्छेने देखा कि मनोरी मलबेकी तरफ़से ग़नीकी बाँह पकड़े हुए आ रहा है । वह उकड़ूँ होकर चिलमके लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा । उसकी आँखें आधा क्षण रक्खेके चेहरे पर टिकतीं और आधा क्षण ग़नीकी ओर लगी रहतीं ।

मनोरी ग़नीकी बाँह पकड़े हुए उससे एक क़दम आगे चल रहा था, जैसे उसकी कोशिश हो कि ग़नी कुएँके पाससे बिना रक्खे पहलवानको देखे ही निकल जाय । मगर रक्खा जिस तरह बिखरकर बैठा था, उससे ग़नीने उसे दूर-से ही देख लिया । कुएँके पास पहुँचते-न-पहुँचते उसकी दोनों बाहें फैल गयी और उसने कहा, "रक्खे पहलवान !"

रक्खेने गरदन उठाकर और आँखें ज़रा छोटी करके उसे देखा । उसके गलेमें अस्पष्ट-सी घरघराहट हुई, पर वह बोला कुछ नहीं ।

"रक्खे पहलवान, मुझे पहचाना नही ?" ग़नीने बाहें नीची करके कहा, "मैं ग़नी हूँ, अब्दुल ग़नी, चिराग़ दीनका बाप !"

पहलवानने सन्देहपूर्ण दृष्टिसे उसका ऊपरसे नीचे तक जायज़ा लिया । अब्दुलग़नीकी आँखोंमें उसे देखकर चमक आ गयी थी । सफ़ेद दाढ़ीके

नीचे उसके चेहरेकी झुर्रियाँ ज़रा फैल गयी थीं। रक्खेका निचला ओंठ फड़का, फिर उसकी छातीसे भारी-सा स्वर निकला, "सुना, ग़निया!"

ग़नीकी बाहें फिर फैलनेको हुई, परन्तु पहलवान पर कोई प्रतिक्रिया न देखकर उसी तरह रह गयीं। वह पीपलके तनेका सहारा लेकर कुएँकी सिल पर बैठ गया।

ऊपर खिड़कियोंमें चेहमेगोइयाँ तेज़ हो गयीं कि अब दोनों आमने-सामने आ गये हैं, तो बात ज़रूर खुलेगी...फिर हो सकता है, दोनोंमें गाली-गलौच भी हो...अब रक्खा ग़नीको कुछ नहीं कह सकता, अब वो दिन नहीं रहे... बड़ा मलबेका मालिक बनता था!...असलमें मलबा न इसका है, न ग़नी का। मलबा तो सरकारकी मलकियत है...किसीको गायका खूँटा नहीं लगान देता।...मन री भी डरपोक है। इसने गनीको बता या क्यों नहीं कि रक्खेने ही चिराग़ और उसके बीबी बच्चोंको मारा है?...रक्खा आदमी नहीं, साँड़ है। दिन-भर साँड़की तरह गलीमें घूमता है...गनी बेचारा कितना दुबला हो गया है? दाढ़ीके सारे बाल सफ़ेद हो गये हैं!...

ग़नीने कुएँकी सिल पर बैठकर कहा, "देख, रक्खे पहलवान, क्यासे-क्या रह गया है? भरा-पूरा घर छोड़कर गया था और आज यहाँ मिट्टी देखने आया हूँ! बसे हुए घरकी यही निशानी रह गयी है। तू सच पूछे,रक्खे, तो मेरा यह मिट्टी भी छोड़कर जानेको जी नहीं करता!" और उसकी आँखें छलछला आयीं।

पहलवानने फैली हुई टाँगें समेट लीं और अँगोछा कुएँकी मुंडेरसे उठा कर कंधे पर डाल लिया। लच्छेने चिलम उसकी तरफ़ बढ़ा दी और वह कश खींचने लगा।

"तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह?" ग़नी आँसू रोकता हुआ आग्रहके साथ बोला, "तुम लोग उसके पास थे, सबमें भाई-भाई की-सी मुहब्बत थी, अगर वह चाहता तो वह तुममेंसे किसीके घरमें नहीं छिप सकता था? उसे इतनी भी समझ नहीं आयी?"

"ऐसा ही है," रक्खेको स्वयं लगा कि उसकी आवाज़में कुछ अस्वाभाविक-सी गूँज है। उसके ओंठ गाढ़े लारसे चिपक-से गये थे। उसकी मूँछों के नीचेसे पसीना उसके ओंठों पर आ रहा था। उसके माथे पर किसी चीज़ का दबाव पड़ रहा था और उसकी रीढकी हड्डी सहारा चाह रही थी।

"पाकिस्तानका क्या हाल है ?" उसने वैसे ही स्वरमें पूछा। उसके गलेकी नसोंमें तनाव आ गया था। उसने अँगोछेसे बगलोंका पसीना पोंछा और गलेका झाग मुँहमें खींच-खींचकर गलीमें थूक दिया।

"मैं क्या हाल बताऊँ, रक्खे", ग़नी दोनों हाथोंसे छड़ी पर ज़ोर देकर झुकता हुआ बोला, "मेरा हाल पूछे, तो वह मेरा ख़ुदा ही जानता है। मेरा चिराग़ साथ होता, तो और बात थी...रक्खे, मैं उसे समझा हटा था कि मेरे साथ चला चल। मगर वह अड़ रहा कि नया मकान छोड़कर कैसे जाऊँ, यहाँ अपनी गली है, कोई ख़तरा नहीं है। भोले कबूतरने यह नहीं सोचा कि गलीमें ख़तरा न सही, बाहरसे तो ख़तरा आ सकता है ? मकान की रखवालीके लिए चारों जनोंने जान दे दी !...रक्खे, उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खेके रहते कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब आनी आयी, तो रक्खेके रोके भी न रुक सकी।"

रक्खेने सीधा होनेकी चेष्टा की, क्योंकि उसकी रीढ़की हड्डी दर्द कर रही थी। उसे अपनी कमर और जाँघोंके जोड़ पर सख़्त दबाव महसूस हो रहा था। पेटकी अँतड़ियोंके पास जैसे कोई चीज़ उसकी साँसको जकड़ रही थी। उसका सारा जिस्म पसीनेसे भीग गया था और उसके पैरोंके तलुवोंमें चुनचुनाहट हो रही थी। बीच-बीचमें नीली फुलझड़ियाँ-सी ऊपरसे उतरतीं और उसकी आँखोंके सामनेसे तैरती हुई निकल जातीं। उसे अपनी ज़बान और ओंठोंके बीचका अन्तर कुछ ज्यादा महसूस हो रहा था। उसने अँगोछेसे ओठोंके कोनोंको साफ़ किया और उसके मुँहसे निकला, "हे प्रभु सच्चिआ, तू ही है, तू ही है, तू ही है !"

ग़नीने लक्षित किया कि पहलवानके ओंठ सूख रहे है और उसकी आँखों के इर्द-गिर्द दायरे गहरे हो आये हैं, तो वह उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, "जी हल्का न कर, रक्खिआ ! जो होनी थी, सो हो गयी । उसे कोई लौटा थोड़े ही सकता है ? खुदा नेककी नेकी रखे और बदकी बदी माफ़ करे ! मेरे लिए चिराग़ नहीं, तो तुम लोग तो हो । मुझे आकर इतनी ही तसल्ली हुई कि उस ज़मानेकी कोई तो यादगार है । मैंने तुमको देख लिया, तो चिराग़को देख लिया । अल्लाह तुम लोगोंको सेहतमंद रखे ! जीते रहो और खुशियाँ देखो !" और गनी छड़ी पर दबाव देकर उठ खडा हुआ । चलते हुए उसने फिर कहा, "अच्छा, रक्खे पहलवान, याद रखना !"

रक्खेके गलेसे स्वीकृतिकी मद्धम-सी आवाज निकली । अँगोछा बीच में लिये हुए उसके दोनों हाथ जुड़ गये। गनी गलीके वातावरणको हसरत भरी नजरसे देखता हुआ धीरे-धीरे गलीसे बाहर चला गया ।

ऊपर खिड़कियोंमें थोड़ी देर चहमेगोइयाँ चलती रहीं कि मनोरीने गलीसे बाहर निकलकर ज़रूर ग़नीको सब कुछ बता दिया होगा...ग़नी के सामने रक्खेका तालू किस तरह खुश्क हो गया था ?...रक्खा अब किस मुँहसे लोगोंको मलबे पर गाय बाँधनेसे रोकेगा ?...बेचारी जुबैदा ! बेचारी कितनी अच्छी थी ! कभी किसीसे मन्दा बोल नहीं बोली...रक्खे मरदूदका घर, न घाट, इसे किस माँ-बहनका लिहाज़ था ?

और थोड़ी ही देरमें स्त्रियाँ घरोंसे गलीमें उतर आयीं, बच्चे गलीमें गुल्ली-डण्डा खेलने लगे और दो बारह-तेरह बरसकी लड़कियाँ किसी बात पर एक दूसरीसे गुत्थम-गुत्था हो गयीं ।

रक्खा गहरी शाम तक कुएँ पर बैठा खँकारता और चिलम फूँकता रहा । कई लोगोंने वहाँसे गुज़रते हुए उससे पूछा, "रक्खे शाह, सुना है, आज ग़नी पाकिस्तानसे आया था ?"

"आया था", रक्खेने हर बार एक ही उत्तर दिया ।

"फिर ?"

"फिर कुछ नहीं, चला गया।"

रात होने पर पहलवान रोज़की तरह गलीके बाहर बायीं ओरकी दुकानके तख़्ते पर आ बैठा। रोज़ अक्सर वह रास्तेसे गुज़रनेवाले परिचित लोगोंको आवाज़ दे-देकर बुला लेता था और उन्हें सट्टेके गुर और सेहतके नुस्ख़े बताया करता था, मगर उस दिन वह लच्छेको अपनी वैश्नो देवीकी यात्राका विवरण सुनाता रहा, जो उसने पंद्रह साल पहले की थी। लच्छे को बिदा करके वह गलीमें आया, तो मलबेके पास लोकू पंडितकी भैंसको खड़ी देखकर वह रोज़की आदतके मुताबिक उसे धक्के दे देकर हटाने लगा—तत्-तत्-तत्...तत्-तत्...

और भैंसको हटाकर वह सुस्तानेके लिए मलबेके चौखट पर बैठ गया। गली उस समय बिल्कुल सुनसान थी। कमेटीकी कोई बत्ती न होनेसे वहाँ शामसे ही अँधेरा हो जाता था। मलबेके नीचे नालीका पानी हल्की आवाज़ करता हुआ बह रहा था। रातकी ख़ामोशीके साथ मिली हुई कई तरहकी हल्की-हल्की आवाज़ें मलबेकी मिट्टीमेंसे निकल रही थीं...च्यु च्यु च्यु... चिक्-चिक्-चिक्...चिर्र्र्र्-इर्र्र्र्-रीरीरीरी-चिर्र्र्र्...एक भटका हुआ कौआ न जाने कहाँसे उड़कर लकड़ीके चौखट पर आ बैठा। उससे लकड़ीके रेशे इधर-उधर छितरा गये। कौएके वहाँ बैठते-न-बैठते मलबेके एक कोनेमें लेटा हुआ कुत्ता गुर्राकर उठा और ज़ोर-ज़ोरसे भौंकने लगा, वऊ-अऊ-अऊऽऽ-वऊ! कौआ कुछ देर सहमा-सा चौखट पर बैठा रहा, फिर वह पंख फड़फड़ाता हुआ उड़कर कुएँके पीपल पर चला गया। कौए के उड़ जाने पर कुत्ता और नीचे उतर आया और पहलवानकी ओर मुँह करके भौंकने लगा। पहलवान उसे हटानेके लिए भारी आवाज़में बोला—दुर् दुर् दुर्...दुरे!

मगर कुत्ता और पास आकर भौंकने लगा—वउ-अउ-वउ-वउ-वउ-वउ..

—हट-हट, दुर्र्र्र्-दुर्र्र्र्र दुरे!...

—वउ-अऊऽऽ-अउ-अउ-अउ-अउ!...

पहलवानने एक ढेला उठाकर कुत्तेकी ओर फेंका। कुत्ता थोड़ा पीछे हट गया, पर उसका भौंकना बंद नहीं हुआ। पहलवान मुँह ही-मुँह कुत्तेको माँकी गाली देकर वहाँसे उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे जाकर कुएँकी सिल पर लेट गया। पहलवानके यहाँसे हटने पर कुत्ता गलीमें उतर आया और कुएँकी ओर मुँह करके भौंकने लगा। काफ़ी देर भौंककर जब गलीमें उसे कोई प्राणी चलता-फिरता दिखायी नहीं दिया, तो वह एक बार कान झटककर मलबे पर लौट आया और वहाँ कोनेमें बैठकर गुर्राने लगा।

मन्दी

चेयरिंग क्रासपर पहुँचकर मैंने देखा कि उस समय वहाँ पर मेरे अतिरिक्त एक भी व्यक्ति नहीं है। एक बच्चा, जो अपनी आयाके साथ वहाँ खेल रहा था, अब उसके पीछे भागता हुआ ठंडी सड़कपर चला गया था। घाटीमें एक जली हुई इमारतका ज़ीना इस तरह शून्यकी ओर झाँक रहा था जैसे विश्वको आत्महत्याकी प्रेरणा और ऊपर आकर कूद जानेका निमंत्रण दे रहा हो। आसपासके विस्तारको देखते हुए उस निःस्तब्ध एकान्तमें मुझे हार्डी-द्वारा वर्णित एक लैंडस्केपका स्मरण हो आया, जिसके कई पृष्ठके वर्णनके अनन्तर मानवता दृश्य-पटपर प्रवेश करती है—अर्थात् एक छकड़ा मंद गतिसे आता दिखाई देता है। मेरे सामने भी खुली घाटी थी, दूर-दूरतक फैली हुई पहाड़ी शृंखलाएँ थीं, बादल थे, चेयरिंग क्रासका सुनसान मोड़ था...और यहाँ भी कुछ उसी तरह मानवताने दृश्यपटपर प्रवेश किया...अर्थात् एक पचास-पचपन वर्षका भद्रपुरुष छड़ी टेकता हुआ दूरसे आता दिखाई दिया। वह इस तरह इधर-उधर निरीक्षणात्मक दृष्टि डालता चल रहा था जैसे देख रहा हो कि जो ढेले पत्थर कल वहाँ पड़े थे, वे आज भी यथास्थान हैं या नहीं। जब वह मुझसे कुछ ही अन्तरपर रह गया, तो उसने आँखें कुंचित करके रेखाओं जैसी बना लीं और मेरे चेहरे पर अध्ययनात्मक दृष्टि डालता हुआ आगे बढ़ने लगा। मेरे निकट आकर उसकी दृष्टिका भाव कुछ निर्णयात्मक हो गया और उसने रुककर छड़ीपर भार देते हुए क्षणभरके विरामके अनन्तर पूछा, "नये आये हो ?"

"जी हाँ" मैंने उसकी मुरझायी हुई पुतलियोंमें अपने चेहरेका प्रतिबिम्ब देखकर ज़रा संकोचके साथ कहा।

"मुझे लग रहा था कि नये आये हो", वह बोला, "पुराने लोग तो अपने रोज़के पहचाने हुए हैं।"

"आप यहीं रहते हैं ?" मैंने पूछा।

"यहीं रहते हैं", उसने विरक्ति और शिकायतके स्वरमें उत्तर दिया "जहाँका अन्न-जल लिखाकर लाये थे, वहीं रहेंगे... अन्न-जल मिले चाहे न मिले।"

उसकी ध्वनि कुछ ऐसी थी जैसे मुझसे उसका कोई पुराना गिला हो। मुझे लगा कि या तो वह परम निराशावादी है या उसे पेटका संक्रामक रोग है। उसकी रस्सीकी तरह बँधी टाईसे यह अनुमान होता था कि वह एक रिटायर्ड सरकारी कर्मचारी है जो अब अपनी कोठीमें सेवका बाग़ लगाकर उसकी रखवाली किया करता है।

"आपकी यहाँपर ज़मीन होगी ?" मैंने जिज्ञासा न रहते हुए भी पूछ लिया।

"ज़मीन ?", उसने स्वरमें और भी, निराशा और शिकायत लाकर उत्तर दिया, "ज़मीन कहाँ जी !" और फिर जैसे कुछ निराशा और व्यंग्यके साथ सिर हिलाकर बोला, "ज़मीन !"

मेरी समझमें नहीं आ रहा था कि अब मुझे उससे क्या कहना चाहिए। वह उसीतरह छड़ीपर भार दिये मेरी ओर देख रहा था। कुछ क्षणोंका वह मौन व्यवधान मुझे विचित्र-सा लगा। उस स्थितिसे निकलनेके लिए मैंने प्रश्न किया, "तो आप यहाँ कोई निजी काम कर रहे हैं ?'

"काम क्या करना है जी ?," उसने उत्तर दिया, "घरसे खाना काम है, तो वही काम करते हैं। आजकल काम क्या रह गये हैं ? हर कामका बुरा हाल है !"

मेरा ध्यान क्षण-भरके लिए जली हुई इमारतके ज़ीनेकी ओर चला गया, जिसके सिरेपर एक बन्दर आ बैठा था और सिर खुजलाता हुआ शायद इस निश्चयपर पहुँचनेकी चेष्टा कर रहा था कि कूद जाय या नहीं।

"अकेले ही आये हो ?" अब उस व्यक्तिने मुझसे पूछा।

"जी हाँ।" मैंने उत्तर दिया।

"आजकल यहाँ कौन आता है ?" वह बोला, "बियाबान जगह है। सैरके लिए तो शिमला, मसूरी वगैरह हैं। वहाँ क्यों नहीं चले गये ?"

मेरी दृष्टि पुनः उसकी पुतलियोंमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर हट गयी। मन होते हुए भी मैं उससे यह नहीं कह सका कि यदि मुझे पहले पता होता कि वहाँ आकर मेरा उससे साक्षात्कार होगा तो मैं ज़रूर किसी और पहाड़ पर चला जाता।

"चलो, अब तो आ ही गये हो", वह पुनः बोला, "कुछ दिन घूम-फिर लो। घर ले लिया ?"

"जी हाँ", मैंने कहा, "कथलक रोडपर एक कोठी मिल गयी है।"

"सभी कोठियाँ ख़ाली पड़ी हैं," वह बोला, "हमारे पास एक कोठरी थी। कल दो रुपये महीनेपर चढ़ाई है। दो-तीन महीने लगी रहेगी। फिर दो-चार रुपये पाससे डालकर सफ़ेदी करा देंगे। और क्या!" फिर दो-एक क्षणके व्यवधानके बाद उसने पूछा, "खानेका क्या इन्तज़ाम किया है ?"

"अभी कुछ नहीं किया", मैंने कहा, "इस समय इसी ख़्यालसे बाहर आया था कि कोई अच्छा-सा होटल देख लूँ, जो ज़्यादा मँहगा भी न हो।"

"नीचे बाज़ारमें चले जाओ", वह बोला, "नत्थासिंहका होटल पूछ लेना। सस्ते होटलोंमें वही अच्छा है। वहीं खा लिया करना। और क्या! पेट ही भरना है!"

और अपनी नहूसत मेरे अन्दर भी भरकर वह पूर्ववत् छड़ी टेकता हुआ अपने रास्ते पर चल दिया।

नत्थासिंहका होटल बाज़ारमें बहुत नीचे जाकर था। जिस समय मैं वहाँ पहुँचा, बुड्ढा सरदार नत्थासिंह और उसके दोनों बेटे अपनी दुकानके सामने हलवाईकी दुकानमें बैठे हलवाईके साथ ताश खेल रहे थे। मुझे देखते

ही नत्थासिंहने तत्परतापूर्वक अपने बड़े लड़केसे कहा, "उठ बसन्ते, ग्राहक आया है।"

बसन्तेने तुरन्त हाथके पत्ते फेंक दिये और बाहर निकल आया।

"क्या चाहिए, साब ?" उसने आकर अपनी गद्दीपर बैठते हुए पूछा।

"चाय बना दो", मैंने कहा।

"अभी लीजिए साब !" और वह केतलीमें पानी डालने लगा।

"अंडे रखते हो ?" मैंने पूछा।

"रखते तो नहीं जी, पर अभी मँगवा देता हूँ", वह बोला, "फ़ाई लेंगे या आमलेट ?"

"आमलेट", मैंने कहा।

"हरबंसे, भागकर ऊपरवाले लालासे दो अंडे ले आ", उसने अपने छोटे भाईको आवाज़ देकर कहा।

उसकी आवाज़ सुनकर हरबंसेने भी झट हाथ के पत्ते फेंक दिये और उठ खड़ा हुआ। उससे पैसे लेकर वह भागता हुआ बाज़ारकी सीढ़ियाँ चढ़ गया। बसन्ता केतली भट्ठी पर रखकर नीचे से हवा करके आँच तेज़ करने लगा।

हलवाई और नत्थासिंह अभी अपने-अपने पत्ते हाथमें लिये थे। हलवाई अपने पाजामेका कपड़ा चुटकीमें लेकर जाँघ खुजलाता हुआ कह रहा था, "अब चढ़ाई शुरू हो रही है, क्यों नत्थासिंह ?"

"हाँ, अब गर्मी आयी है, चढ़ाई तो शुरू होगी ही", नत्थासिंह अपनी सफ़ेद दाढ़ीमें उँगलियोंसे कंघी करता हुआ बोला, "यही तो चार पैसे कमानेके दिन हैं।"

"पर नत्थासिंह, अब वह बात नहीं है," हलवाई बोला, "पहले दिनोंमें हज़ार-बारह सौ आदमी निकलकर इधरको आते थे, हज़ार-बारह सौ निकल कर उधरको जाते थे तो लगता था कि लोग बाहरसे आये हैं। अब आ भी गये सौ-पचास तो क्या है !"

"सौ-पचासकी भी बड़ी बरकत है", नत्थासिंह कुछ धार्मिकताके स्वरमें बोला ।

"कहते हैं कि किसीके पास पैसा ही नहीं रहा," हलवाईने विमर्श करते हुए कहा, "यह बात मेरी समझमें नहीं आती । दो-चार साल सबके पास पैसा ही पैसा हो जाता है और फिर एकदम सब-के-सब भूखे-नंगे हो जाते हैं, जैसे किसीने पैसों पर बाँध बाँधकर रखा है । जब चाहता है छोड़ देता है, जब चाहता है रोक लेता है ।"

"सब करनी कर्तारकी है," कहता हुआ नत्थासिंह भी पत्ते फेंककर उठ खड़ा हुआ ।

"कर्तारकी करनी कुछ नहीं है," हलवाई अनिच्छापूर्वक पत्ते रखता हुआ बोला, "जब कर्तार पैदावार उसी तरह करता है तो फिर लोग क्यों भूखे, नंगे हो जाते हैं ? मेरी समझमें यह बात नहीं आती ।"

नत्थासिंहने दाढ़ी खुजलाते हुए आकाशकी ओर देखा, जैसे खीज रहा हो कि कर्तारके अतिरिक्त दूसरा कौन है जो लोगोंको भूखे-नंगा बना सकता है ।

"कर्तार ही जानता है," क्षण भर बाद उसने सिर हिलाकर कहा ।

"कर्तार कुछ नहीं जानता," हलवाईने ताशकी गड्डी फटी हुई डिबिया में रखते हुए नकारात्मक भावसे सिर हिलाकर कहा और अपनी गद्दी पर आ गया ।

मैं यह नहीं समझ सका कि हलवाईने कर्तारको निर्दोष बतानेकी चेष्टा की है या कर्तारकी ज्ञानशक्ति पर संदेह प्रकट किया है ।

कुछ देर बाद जब मैं चाय पीकर वहाँसे चलने लगा तो बसंतेने मुझसे कुल छह आने माँगे । उसने हिसाब भी दिया—चार आनेके अंडे, एक आनेका घी और एक आनेकी चाय । जब मैं पैसे देकर बाहर निकला तो नत्थासिंह ने पीछेसे आवाज़ देकर कहा, "भाई साहब, रातको खाना भी यहीं खाइयेगा । आज आपको स्पेशल चीज़ खिलायेंगे । ज़रूर आइएगा ।"

उसका स्वर इतना अनुरोधपूर्ण था कि मैं मुसकराये बिना नहीं रह सका। मैंने सोचा कि उसने छह आनेमें मुझसे क्या कमा लिया है जो मुझसे फिर रातको आनेका अनुरोध कर रहा है।

सायंकाल सैरसे लौटते हुए मैंने बुक एजेंसीसे अख़बार ख़रीदा और बैठकर पढ़नेके उद्देश्यसे एक बड़े-से रेस्तराँके अन्दर चला गया। अन्दर पहुँच कर मैंने देखा कि कुर्सियाँ, मेज़ और सोफ़े तो व्यवस्थापूर्वक रखे हुए हैं, पर न हालमें कोई बैरा है और न काउण्टर पर ही कोई व्यक्ति है। मैं एक सोफ़े पर बैठकर अख़बार पढ़ने लगा। एक कुत्ता जो उस सोफ़ेसे सटकर लेटा हुआ था, अब वहाँसे उठकर सामनेके सोफ़े पर बैठ गया और मेरी ओरको जीभ लपलपाने लगा। मैंने एक बार मेज़को थपथपाया, 'बैरा' कहकर आवाज़ दी, पर कोई मानवीय आकृति प्रकट नहीं हुई। अलबत्ता, कुत्ता सोफ़ेसे मेज़ पर आकर अब और भी निकटसे मेरी ओरको जीभ लपलपाने लगा। मैं अपने और उसके बीच अख़बारका व्यवधान करके समाचार पढ़ता रहा।

इस तरह बैठे हुए मुझे पन्द्रह-बीस मिनिट बीत गये। अन्तमें जब मैं वहाँसे उठनेको हुआ, तो बाहरका दरवाज़ा खुला और पाजामा कमीज़ पहने एक व्यक्तिने अन्दर प्रवेश किया। मुझे देखकर उसने दूरसे ही सलाम किया और पास आकर ज़रा संकोचके साथ बोला, "माफ़ करना जी, मैं एक बाबूका सामान मोटरके अड्डे पर छोड़ने चला गया था। आपको ज़्यादा देर तो नहीं हुई?"

मैंने उसके ढीले-ढाले कलेवर पर एक अध्ययनात्मक दृष्टि डाली और पूछा, "यहाँ तुम अकेले ही काम करते हो?"

"जी, आजकल मैं अकेला ही हूँ,, उसने उत्तर दिया, "दिन भर मैं यहीं पर रहता हूँ, सिर्फ़ बसके वक़्त किसी बाबूका सामान मिल जाय तो अड्डे पर छोड़ने चला जाता हूँ।"

"यहाँका मैनेजर कौन है?" मैंने पूछा।

"जी, मालिक आप ही मनीजर है," वह बोला, "वह आजकल अमृतसर रहता है। यहाँका सारा काम मेरे ज़िम्मे है।"

"तुम यहाँ चाय-वाय बनाते हो ?"

"चाय, काफ़ी, जो आर्डर करें बन सकता है !"

"ज़रा अपना मेन्यू लाओ।"

उसके चेहरेके भावसे मैंने अनुमान लगाया कि वह मेरी बात नहीं समझा। मैंने उसे समझाते हुए कहा,' तुम्हारे पास चीज़ोंकी छपी हुई लिस्ट होगी, वह ले आओ।"

"अभी लाया जी," कहकर वह सामनेकी दीवारकी ओर गया और वहाँसे एक गत्ता उतार लाया। देखकर मुझे पता चला कि वह होटलका लायसेंस है।

"यह तो यहाँका लायसेंस है," मैंने कहा।

"छपी हुई लिस्ट तो यहाँ पर यही है," उसने कुछ असमंजसमें पड़कर कहा।

"अच्छा तो चाय ले आओ," मैंने कहा।

"अच्छा जी," वह बोला, "मगर साहब," और स्वरमें आत्मीयता लाकर उसने कहा, "मैं तो कहता हूँ, खानेका टाइम है खाना ही खाओ। चायका क्या पीना ! अन्दर जाकर नाड़ियोंको ही जलाती है।"

मैं उसके तर्क पर मन ही मन मुसकराया। मुझे भूख लग रही थी, अतः मैंने पूछा, "क्या-क्या तरकारी बनाते हो ?"

"आलू-मटर, आलू-टमाटर, भुर्ता, भिंडी, आलू, कोफ्ता, रायता..." वह जल्दी-जल्दी लंबी-सी सूची बोल गया।

"कितनी देरमें ले आओगे ?" मैंने पूछा।

"बस पाँच मिनिट में।"

"तो आलू-मटर और रायता ले आओ।"

"अच्छा जी," वह बोला, "पर साहब," और पुनः स्वरमें आत्मीयता लाकर उसने कहा, "बरसातका मौसम है, मैं कहता हूँ रातके वक़्त रायता नहीं खाओ तो अच्छा है। ठंडी चीज़ है, बाज़ वक़्त नुकसान कर जाती है।"

उसकी आत्मीयतासे प्रभावित होकर मैंने कहा, "अच्छा सिर्फ़ आलू-मटर ले आओ।"

"अभी लो जी, अभी लाया", कहता हुआ वह नीचेकी ओर चला गया।

उसके चले जाने पर मैं कुत्तेसे दिल बहलाने लगा। कुत्तेको शायद दिनोंसे कोई चाहने वाला नहीं मिला था। वह मेरे साथ आवश्यकतासे अधिक प्यार दिखाने लगा। चार-पाँच मिनिट बाद बाहरका दरवाज़ा फिर खुला और एक पहाड़ी नवयुवती अन्दर आ गयी। उसकी वेशभूषा और पीठकर बधी टोकरीसे प्रकट था कि वह कोयला बेचने वाली लड़कियों-मेंसे है। यदि सौन्दर्यका सम्बन्ध चेहरेकी रेखाओंके साथ ही हो तो वह सुन्दर कही जा सकती थी। वह सीधी चलकर मेरे निकट आ गयी और बोली "बाबूजी, हमारे पैसे मिल जायँ।"

कुत्ता मेरे पास था इसलिए मैं उसकी बातसे अव्यवस्थित नहीं हुआ।

मेरे कुछ कहनेसे पूर्व वह फिर बोली, "आपके आदमीने एक किल्टा कोयला लिया था। छह-सात दिन हो गये। कहता था कि दो दिनमें पैसे ले जाना। आज तीसरी बार माँगने आयी हूँ। मुझे पैसोंकी बहुत ज़रूरत है।"

मैंने कुत्तेको बाहोंसे निकल जाने दिया। मेरी दृष्टि उसकी आँखों की नीलिमाको देख रही थी। उसके कपड़े... पायजामा, क़मीज़, वास्कट-चादर और पटका, सभी बहुत मैले थे। मुझे उसकी ठुड्डीकी तराश बहुत सुन्दर लगी। मैं सोचने लगा कि यदि उसकी ठुड्डीके सिरेपर एक तिल होता....

"चौदह आने पैसे हैं," वह कह रही थी।

मैंने सोचा कि उसे ठुड्डीके तिल और चौदह आने पैसेमें से एक चीज़ चुननेको कहा जाय तो वह अवश्य चौदह आने पैसे ही चुनेगी ।

"मुझे बाज़ारसे सौदा ले कर जाना है," वह कह रही थी ।

"कल सबेरे आना !" उसी समय बैरेने नीचेसे आते हुए दूरसे कहा ।

"रोज़ कल सबेरे बोल देता है," वह मुझे लक्षित कर ज़रा क्रोधके साथ बोली, "इससे कहिए कि कल सबेरे मेरे पैसे ज़रूर दे दे ।"

"इनसे क्या कह रही है, ये तो यहाँ पर खाना खाने आये है," बैरेने उससे कहा ।

इससे उसकी नीली आँखोंमें संकोचकी हल्की-सी लहर दौड़ गयी । वह स्वर बदल कर मुझसे बोली, "आपको कोयला चाहिए ?"

"नहीं" मैंने कहा ।

"चौदह आनेका किल्टा दे दूँगी, कोयला देख लो", कहते हुए उसने अपनी चादरकी किसी तह मेंसे एक कोयला निकालकर मेरी ओर बढ़ा दिया ।

"ये यहाँ आकर खाना खाते हैं, इन्हें कोयला नहीं चाहिए", बैरा झिड़क-कर उससे बोला ।

"आपको खाना बनानेके लिए नौकर चाहिए ?" वह मुझसे बोली, "मेरा छोटा भाई है । सब काम जानता है । पानी भी भरेगा, बरतन भी माँजेगा. . . ."

"चल यहाँसे", बैरा उसकी बात बीचमें ही काटकर ज़रा तीखे स्वरमें बोला ।

"आठ रुपये महीनेमें सारा काम कर देगा", वह बैरेके स्वरको महत्त्व न देकर मुझे लक्षित करके कहती रही । पहले एक डाक्टरके घरमें काम करता था । डाक्टर अब चला गया है . . ."

बैरेने उसे बाँहसे पकड़ लिया और बाहरकी ओर ले जाता हुआ बोला, "चल जाकर अपना काम कर । इन्हें नौकर नहीं चाहिए ।"

"मैं कल इसी वक़्त उसे लेकर आऊँगी," वह चलती हुई मुड़कर बोली ।

बैरा उसे दरवाजेसे बाहर पहुँचाकर मेरी ओर आता हुआ बोला, "कमीनजात ! ये लोग ऐसे गले पड़ जाते हैं जैसे..."

"खानेमें कितनी देर है ?" मैंने पूछा ।

"बस जी पाँच मिनटमें लाया" वह बोला, "आटा गूंधकर सब्जी चढ़ा आया हूँ, ज़रा नमक ले आऊँ, आकर चपातियाँ बनाता हूँ ।"

खाना ख़ैर मुझे काफ़ी देर बाद मिला । खाना खानेके बाद मैं देर तक गोल सड़क पर टहलता रहा क्योंकि पूर्णिमाकी रात थी और पहाड़ियों पर छिटकी हुई चाँदनी बहुत अच्छी लग रही थी । लौटते समय बाज़ारके पाससे निकलते हुए मैंने सोचा कि नाश्तेके लिए सरदार नत्थासिंहसे दो अंडे उबलवा कर लेता चलूँ । दस बज चुके थे पर नत्थासिंहकी दूकान अभी खुली हुई थी । जिस समय मैं वहाँ पहुँचा, नत्थासिंह और उसके दोनों बेटे पैरोंके भार बैठे खाना खा रहे थे । मुझे देखते ही बसन्तेने कहा, "वह लो, भाई साहब आ गये ।"

"हम कितनी देर तक इंतज़ार कर-करके अब खाना खाने बैठे हैं!", हरबंस बोला ।

"ख़ास आपके लिए मुर्ग़ा बनाया था," नत्थासिंह बोला, "हमने कहा कि भाई साहब देख लें कि हम कैसी चीज़ बनाते हैं । सोचा था कि दो एक प्लेटें और भी लग जाएँगी। पर न आप ही आये और न किसी और ने ही प्लेट ली । अब हम तीनों आप खाने बैठे है । मैंने मुर्ग़ा इतने चावसे, इतने प्रेमसे बनाया था कि क्या कहूँ ! क्या पता था कि आप खाना पड़ेगा । ऐसे भी दिन देखने थे ! एक वे दिन थे, जब अपने लिए मुर्ग़ोंका शोरबा नही बचता था और एक यह दिन है । भरी हुई पतीली अपने आगे रखकर बैठे हैं । साढ़े तीन रुपये लग गये, अब पेटमें जाकर खनकते भी नहीं । जो तेरी करनी मालिका !"

"इसमें मालिककी क्या करनी है ?" बसन्ता ज़रा तीखा होकर बोला, "जो करनी है सब अपनी ही है । आपही को जोश आया हुआ था कि चढ़ाई

शुरू हो गई है, लोग आने लगे हैं, कोई अच्छी चीज़ बनानी चाहिए। मैंने कहा था कि अभी आठ-दस दिन ठहर जाओ, ज़रा रुख़ देख लेने दो। पर आप नहीं माने। बोले कि अच्छी चीज़से मुहूर्त्त करेंगे तो सीज़न अच्छा निकलेगा। लो, हो गया मुहूर्त्त!"

उसी समय वह व्यक्ति, जो कुछ घंटे पहले मुझे चेयरिंग क्रास पर मिला था, मेरे निकट आकर खड़ा हो गया। अँधेरेमें उसने मुझे नहीं पहचाना और छड़ी पर भार देकर नत्थासिंहसे बोला, "नत्थासिंह, एक ग्राहक भेजा था, आया कि नहीं?"

"कौन-सा ग्राहक?" नत्थासिंहने मुरझाये हुए स्वरमें पूछा।

"घु घराले बालों वाला था, ज़रा मोटे शीशेका चश्मा लगाये हुए..."

"ये भाई साहब खड़े हैं!" इससे पहले कि वह विस्तृत वर्णन देता, नत्थासिंहने उसे होशियार कर दिया।

"अच्छा आ गये हैं!" उसने मुझे लक्षित करके कहा और फिर नत्थासिंहकी ओर देखकर बोला, "तो ला नत्थासिंह, फिर चायकी एक प्याली पिला।"

कहता हुआ वह अन्दर जाकर सन्तुष्ट भावसे टीनकी कुर्सी पर बैठ गया। बसन्ता केतली भट्टी पर रखता हुआ जिस तरह बुदबुदाया उससे स्पष्ट था कि वह व्यक्ति चायकी प्याली ग्राहक भेजनेके उपलक्ष्य में पीने जा रहा है!

●

फटा हुआ जूता

टाइमपीसने अलार्म दिया। रायकी नींद टूट गयी। उसने चादर टाँगोंसे उतार फेंकी और बैठ कर टाइमपीसको चाबी देने लगा। बारह साल पहले तीन रुपयेमें लिया हुआ वह जापानी टाइमपीस आज बुढ़ापेमें भी बारह घंटेका सफ़र चौदह घंटेमें तय कर ही लेता था और सबेरे पाँच बजेका अलार्म पाँचसे सातके बीच किसी भी समय बजा कर उसे जगा दिया करता था।

अभी टाइमपीसमें पाँच ही बजे थे, हालाँकि धूप खिड़कीसे हट कर मेज़ पर से होती हुई उसके बिस्तरकी सीमाओं तक पहुँच गयी थी। रायने अंदाज़ेसे घड़ीमें पौने सात बजाये और उसे खिड़कीमें कंघे शीशेके पास रख कर उठ खड़ा हुआ।

खड़े होकर रायने एक अँगड़ाई ली। फिर उसने गद्देको गोल किया, उठाया और छज्जे पर टीनके ऊपर पटक दिया। उसके बाद उसने मेज़ को दीवारके पाससे खींच कर कमरेके बीच कर दिया, कुर्सियोंको मेज़के इधर-उधर लगा दिया और 'एशिया सर्जिकल कंपनी' का बोर्ड उठा कर बाहर लटका दिया। इस तरह शयनागारको कार्यालयमें परिणत करके उसने सामने औषधालयके चौकीदारसे माचिस लेकर सिगरेट सुलगाया और छज्जे पर आकर पिछले घरकी जालीदार खिड़कीके पास हिलती हुई नारीमूर्तिको देखने लगा।

राय, अर्थात् दामोदरदास चिन्तामणि राय, उन व्यक्तियोंमेंसे था जो ईश्वरकी प्रयोगशालासे अकेले ही बनकर आते हैं। उसके दाँत काफ़ी आगे को उभरे हुए थे और आँखें पीछेको धँसी हुई थीं, और उसकी बाँहों और टाँगोंमें कुछ ऐसे ख़म पड़ते थे जिनसे किसी भी चीज़की उपमा नहीं दी जा

सकती । उसके कंधोंसे मिली हुई गरदनकी रेखाएँ इस बातकी गवाही देती थी कि उसके शरीरमें मांस केवल नामको ही है । वह हाथ हिलाता या ओंठों पर ज़बान फेरता या सिगरेटका कश खींचता तो उसमें कुछ अस्वाभाविक-सा लगता था—कुछ ऐसे लगता था जैसे वह व्यक्ति हिलने डुलनेमें ही एक तरहका मज़ाक कर रहा हो ।

जब सिगरेट उस सीमा तक पिया जा चुका कि और कश खींचनेसे ओंठ जल जाते तो रायने बाक़ी टुकड़ा फेंक दिया । सिगरेटका टुकड़ा हवा में लकीर खींचता हुआ नीचे अख़बार वालेके अख़बार पर गिरा और वहाँ से धक्का खाकर गलीमें आमके छिलकेके पास जा लेटा ।

खिड़कीसे हटकर रायने एक लंबी साँस ली । फिर उसने एक अलमारी के पीछेसे तौलिया निकाल कर कंधे पर रख लिया और कमरेसे बाहर चला गया ।

नहाने, खाना खाने और दो-एक डाक्टरोंकी दुकानोंके चक्कर लगानेके बाद जब राय अपनी कुर्सी पर आकर बैठा, उस समय साढ़े ग्यारह बज रहे थे । उसने पत्र लिखनेके लिए पैड उठाया पर वह 'डियर सर' से आगे नहीं बढ़ सका । फिर उसने एक फ़ाइल उठायी, पर उसे भी देखनेका उसका मन नहीं हुआ । उसकी आँखें दूरकी जालीदार खिड़की परसे होती हुई सामने दीवार पर लगे कैलेंडर पर स्थिर हो आयीं जब कि उसका हाथ स्याहीदान पर पंचिंग मशीन और पंचिंग मशीन पर पेपर वेट रखता और हटाता रहा । फिर उसने कुर्सीकी पीठसे टेक लगा ली और ऊपर छतकी कड़ियाँ देखने लगा । एक बार ज़रा-सा खटका हुआ तो उसने चौंक कर दरवाज़ेकी ओर देखा मगर कोई आहट न पाकर फिर उसी तरह छतकी ओर देखने लगा ।

प्रतीक्षा करनेमें उसे बहुत झुँझलाहट होती थी । रोज़ उसे कहीं न कहीं किसी न किसी चीज़के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती थी । सुबह नहाने के लिए जाता तो अक्सर नल सू सू की आवाज़ करके रह जाता था और

वह तब तक इंतज़ार करता खड़ा रहता था जब तक कि निचली मंज़िल वाले न नहा चुकें। ढाबेमें जाता तो तब तक कोई उसकी ओर ध्यान नहीं देता था जब तक वह बीस मिनिट बैठे रहनेके अनन्तर उठ जानेकी धमकी न दे। बसके क्यूमें भी अक्सर वह खड़ा रह जाता था, और पीछेसे भाग कर आने वाले चढ़ जाते थे। अब दो दिनसे यह पोस्टमैन था कि आनेका नाम ही नहीं ले रहा था। रातको सपनेमें उसने कितनी ही बार पोस्टमैन को आते देखा था, पर हर बार वह दूरसे ही मुसकरा कर या सलाम करके चला गया था। रायने सोतेमें भी पोस्टमैनको जी भर कोसा था और अब भी चाह रहा था कि एक मोटी-सी गाली देकर दिलका गुबार निकाल ले।

मेज़के नीचे रद्दीकी टोकरीके पास उसका जूता पड़ा था, जो उसने बाहरसे आते ही खोल कर रख दिया था। जूतेके मैले सिकुड़े हुए तलुवे तिरछे होकर आधा आधा इंच ऊपरको सरक आये थे। पीछेकी दोनों ओर की सीवनें उधड़ रही थीं। उसे याद नही था कि यह जूता उसने कब ख़रीदा था—उसे ख़रीदे हुए कमसे कम अढ़ाई तीन साल हो चुके थे। जूतेके दाँत बहुत पहले ही निकलने लगे थे, पर राय उसे ठोंक पीटकर लटकाता आ रहा था। कुछ महीने पहले सामनेसे जूतेके ओंठ भी खुल गये थे पर रायने मोचीको चवन्नी देकर उन्हें बंद करा लिया था। मगर इसके बाद जब जूतेकी बग़लें शिकायत करने लगीं तो रायको बैठ कर गंभीरतापूर्वक सोचना पड़ा और सोचनेका परिणाम यह निकला कि उसे नक़द तीस रुपये का पुरस्कार मिल गया।

घिसा हुआ जूता बंबईकी पटरियों पर बहुत सफ़ाईके साथ फिसलता है—और रायका जूता तो फिसलते समय शब्द भी किया करता था। पर यह रोज़ रोज़की बात उसके लिए उतनी ही स्वाभाविक हो चुकी थी जितनी गुजराती ढाबेकी रोटियाँ, पाउडर दूधकी चाय और पारसी लड़कियों की लटकेदार अंग्रेज़ी। परन्तु जब एक दिन जूतेके फिसलने पर एक नोकदार कील जूतेके तलेमें सूराख़ करके उसके पाँवमें आ घुसी, तो पाँवकी पीड़ा

स्नायुओंमेंसे होती हुई उसके मस्तिष्कमें पहुँची और मस्तिष्कके किसी कोनेमें सोयी हुई चिंतनशक्ति झटका खाकर सहसा जाग उठी ।

रायने सोचा और सोचकर निश्चय किया कि जीना हो तो उसे ठीकसे जीना चाहिए । यह अंग अंगमें ऊँघती हुई शिथिलता, यह खाना सोना और बीतना, बरसों खेली हुई ताशकी तरह घिसा हुआ जीवन, यह सब बदलना चाहिए ।

निश्चय पर पहुँच कर उसने उपाय सोचना आरम्भ किया । नयी नौकरी मिलना असम्भव था । मैट्रिक फ़ेल होनेके कारण एशिया सर्जिकलकी नौकरी भी बहुत सिफ़ारिशके बाद मिली थी । उसे दो ही काम दिखायी दिये जो बिना किसी तरद्दुदके आसानीसे किये जा सकते थे—एक कहानियाँ लिखना और दूसरे पहेलियाँ भरना । रायने एक ही मुहूर्तमें दोनों काम आरम्भ कर दिये ।

रायकी कहानी तो जहाँ गयी, वहीं की हो रही—न छपी ही और न लौटकर ही आयी । पर पहेलीमें किसी तरह उसका तीस रुपयेका पुरस्कार निकल आया । रायने पुरस्कार-विजेताओंकी सूचीमें अपना नाम देखा तो उसे विश्वास हो गया कि उसकी छिपी हुई योग्यताको अपने लिए मार्ग मिल गया है—वह अब पहेलियाँ भर कर अपना जीवनस्तर ऊँचा उठा सकता है ।

प्रकाशित सूचनाके अनुसार पुरस्कार छब्बीस तारीख़को भेजे जा रहे थे और उस दिन उनतीस तारीख़ थी । रायके लिए एक एक क्षण काटना भारी हो रहा था । उसकी आँखें छतकी दरारोंको देखतीं, फिर दीवार पर लगे कैलेण्डरको और फिर दरवाज़ेके चौखट पर स्थिर हो जातीं, जहाँ एक मकड़ी अपने जालेमें उलझी हुई कभी नीचे गिरती, फिर ऊपर उठने लगती और फिर नीचे गिर जाती थी ।

आख़िर जब पोस्टमैन आया तो रायका मन मकड़ीके जालेमें इतना उलझा हुआ था कि वह पोस्टमैनको देखकर चौंक गया ।

पोस्टमैनके हाथसे रजिस्ट्रीका लिफ़ाफ़ा लेते हुए उसका हाथ ज़रा-सा काँप गया। रसीद पर उसके हस्ताक्षर भी बिगड़ गये। रसीद पोस्टमैनको देकर वह तुरन्त पोस्टमैनके विषयमें भूल गया। उसने काँपती उँगलियों-से लिफ़ाफ़ेको खोला। अन्दरसे छपे हुए पत्रके साथ एक हरे रंगका चेक निकला। राय जल्दी-जल्दी पत्रको आरम्भसे अन्त तक देख गया। कई मोटे मोटे शब्द उसे समझ नहीं आये। पत्र पढ़नेका जैसे उसने फ़र्ज़ पूरा किया और फिर चेकको दोनों हाथोंसे मेज़ पर फैला कर देखने लगा।

चेकका काग़ज़ बहुत चिकना था और उस पर बहुत सुन्दर इबारतमें उसका नाम लिखा हुआ था। तीन और शून्यके अंक भी बहुत सधे हुए ढंगसे लिखे गये थे। हरे काग़ज़ पर वह नीली लिखाई बहुत नयी और सजीव लग रही थी। रायने चेकसे अपने हाथ हटा लिये। उसके हाथ बहुत मैले और मुरझाये हुए थे। उसके नाखून बढ़े हुए थे और उनमें मैल की लकीरें जमा थीं। उसे अपने हाथों पर झुँझलाहट हुई। उसे लगा कि उसके हाथ चेककी नीली लिखावटकी तरह सुन्दर और सुडौल होने चाहिए—भरे भरे और कसाव लिये हुए। उसने दो एक बार मुट्ठियाँ बाँध कर खोलीं और हाथोंको मला। पर वे उँगलियाँ वैसीकी वैसी ही रहीं—जिनके एक एक पोर पर न जाने कितनी लकीरें खिची थीं—जैसे वे कुहरेमें ठिठुरी हुई उँगलियाँ हों।

रायने दोनों हाथोंकी उँगलियाँ उलझा कर हथेलियाँ मिला लीं। उस का ध्यान रद्दीकी टोकरीके पास रखे जूतेकी ओर चला गया। जूतेका चमड़ा भी उसकी उँगलियोंके चमड़ेकी तरह सूखा था। बहुत पहले वह चमड़ा शायद किसी हट्टे-कट्टे पशुके शरीर पर था। वहाँसे उतर कर वह भीगा, छिला, कटा, सिला और उसके पैरमें आया। पैरमें घिसा, फटा, सूखा और बेकार हो गया। मगर उसके हाथका चमड़ा ? वह उसके शरीर पर ही सूख रहा था—क्यों ?

रायके मनमें बग़ावतका भाव पैदा हुआ—अपने प्रति, उस कमरेकी नीची छत और चारों ओरसे कसती हुई दीवारोंके प्रति, एशिया सर्जिकलकी

फ़ाइलों और अलमारियोंमें रखे चीरफाड़के औज़ारोंके प्रति और मालिकसे लेकर गुजराती ढाबेके बैरों तक हरएकके प्रति । उसे कुछ क्षणोंके लिए तो लगा कि वह अपने सारे वातावरणको तहस-नहस कर देगा, पर फिर उसकी आँखें हरे चेककी नीली इबारत पर स्थिर हो गयीं और तीन और शून्यके हिंदसे अधिक मांसल होकर उसके सामने उभरने लगे । धीरे-धीरे उन हिंदसोंका अर्थ हो गया दस दसके तीन नोट, नये या मैले, पर कुछ भी ख़रीदने में समर्थ । उन नोटोंकी आकृतियोंके नीचे रायका बग़ावतका भाव दब गया ।

ये तीस रुपये बिल्कुल उसके अपने थे । हर मास उसे जो वेतनके साठ रुपये मिलते थे, वे कभी उसके अपने नहीं होते थे । उनमेंसे चालीस पैंतालीस रुपये तो पहले दिन ही होटल और सिगरेट वालेका बिल चुकानेमें चले जाते थे और इस पर भी अर्सेसे उनका बक़ाया चला आ रहा था । बाक़ी रुपये भी तीन चार दिनसे अधिक जेबमें नहीं रहते थे, क्योंकि उसकी कितनी ही इंसानी ज़रूरतें उधारके सिर पर पूरी होती थीं, और जो लोग उधार देते थे वे महीनेके पहले सात दिनोंमें किसी न किसी तरह सामने पड़ ही जाते थे । मगर वे तीन और शून्यके दोनों हिंदसे आज उसके अपने थे—वह उनसे कुछ भी कर सकता था, कुछ भी ख़रीद सकता था । रायने चेक हाथ में ले लिया और फिर कुर्सीके साथ टेक लगा कर थोड़ा पीछेकी ओर झूल गया ।

तीस रुपये—नक़द तीस रुपये उसके पास थे जिनका वह जैसे चाहे उपयोग कर सकता था । उसने पैरोंमें फटे हुए जूतेके स्थान पर चमकते हुए नये जूतेकी कल्पना की, शरीर पर शार्कस्किनकी बुशशर्ट और आर्टलिनकी पतलूनकी कल्पना की । परन्तु तभी उसके वे सूखे हुए हाथ सामने आ गये जिनकी उँगलियाँ बढ़े हुए नाखूनोंके अनुपातमें छोटी प्रतीत होती थीं, और वह विटामिन बीकी गोलियों, नारंगियों और मक्खनकी टिकियाओंकी कल्पना करने लगा । जब ये सब कल्पनाएँ एक दूसरीमें उलझ गयीं तो

वह फिर कुर्सी सीधी करके मेज़ पर झुक गया और चेकके सुडौल हि दसोंको देखने लगा ।

शामको जिस समय राय कुर्सियाँ हटाकर और बिस्तर बिछा कर ताला हाथमें लिये हुए कमरेसे बाहर निकला, उस समय तक वह चेक, नीचेके इम्पोर्ट एक्सपोर्ट वाले दीनू भाईकी सहायतासे तीन नोटोंमें बदल चुका था। ताला लगा कर जब वह नीचे उतरा तो उसके ओंठ हल्की-सी मुसकराहटसे अनायास फैल रहे थे और चुटकी बजा कर सिगरेटकी राख झाड़नेमें ख़ासी बेपरवाही आ गयी थी । चार मंज़िलोंकी सीढ़ियाँ उतर कर जब वह बाज़ारमें आया तो कई क्षण सिगरेटके लंबे-लंबे कश खीचता हुआ खड़ा रहा। कालबा देवीकी तरफ़ कई ट्रामें एक दूसरेके पीछे घिसटती जा रही थीं, और प्रिंसेस स्ट्रीटके मोड़ पर फ्लोरा फ़ाउण्टेनको जानेवाली बस आकर रुकी ही थी । रायके देखते-देखते वह बस चली गयी, लेकिन उसके क़दम उसकी ओर नहीं बढ़े, हालाँकि वह फ्लोरा फ़ाउण्टेन जानेके इरादेसे ही निकला था । उसने सिगरेटका आख़िरी कश खींच कर उसके नाखून भरके टुकड़ेको पैरके नीचे मसल दिया और पैदल क्राफ़र्ड मार्केटकी तरफ़ जाने वाली पगडंडी पर चल पड़ा ।

क्राफ़र्ड मार्केटसे ज़रा पहले ही बाई ओर वह दुकान थी जिसके शोकेसमें रखा सफ़ेद ब्राउन जूता रोज़ उसकी आँखोंको बरबस अपनी ओर खींच लिया करता था । जूता आज भी यथास्थान तिरछे कोणसे रखा था और उसका टिप बहुत चमक रहा था । राय पल भर जूतेके टिप और गदराये हुए फ़ीतेको देखता रहा और फिर ज़रा चेष्टासे चेहरेको गम्भीर बना कर और पतलूनकी बिगड़ी हुई लकीरको थोड़ा सँवार कर दुकानके अंदर चला गया ।

पहले उसने वह सफ़ेद-ब्राउन जूता ही निकलवाया । उसका चमड़ा बहुत मुलायम था और सोल डेढ़ उँगली मोटा था । रायने पुराना जूता उतार कर उसे पाँवमें पहन लिया और दुकानके मोटे ग़लीचे पर चहलक़दमी करने लगा । दुकानदारने जूतेका दाम उनतीस रुपये पंद्रह आने

बतलाया था। रायने चलते हुए शीशेमें अपना प्रतिबिम्ब देखा। सिर पर उसके रूखे वालोंकी गाँठें सी बँध रही थीं। कमीज़का कालर दोनों ओरसे फट गया था और नीचेका कपड़ा बाहर निकल आया था। पतलूनकी लकीर को उसने बाहरसे आते हुए ठीक करनेकी चेष्टा की थी, पर उससे उसके समानान्तर एक और लकीर बन गयी थी। उसके नीचे पैरमें वह उनतीस रुपये पंद्रह आनेका जूता था, जिसका सोल चलते-चलते ग़लीचे परसे फिसल जाना चाहता था। एक बार उसने एक मन्दिर देखा था, जिसके टूटे फूटे कलश पर किसीने सोनेकी झंडी लगवा दी थी। उस मन्दिरका ध्यान आते ही वह शीशेके सामनेसे हट कर कुरसी पर आ बैठा। उसके मनने जल्दी-जल्दी व्यवस्था दी कि तीस रुपयेका जूता खरीदना बेकार है—सोलह सत्रहका कोई गुज़ारे लायक जूता ले लिया जाय, और बाक़ी रुपयोंसे एक कमीज़ पतलून बनवा ली जाय। वेतनके रुपयोंमेंसे पैसा निकाल कर कुछ बनवा पाना तो लगभग असम्भव ही था...

दुकानदार उसके अनिश्चयको भाँप रहा था। उसने जूता उसके पैरसे उतार कर दो बार हाथमें उछाला और फिर फूँक मार कर कपड़ेसे पोंछते हुए कहा, "इसके अलावा आपको और क्या चाहिए?" और उसने अपने लड़केको आवाज़ दी कि वह जूता बाँध दे।

"अभी ठहरिए", राय कुछ अव्यवस्थित होकर बोला, "दो-एक इससे हल्के डिजाइन भी दिखा दीजिए, ज़रा देख लें तो..."

दुकानदारने दस रुपयेसे लेकर पच्चीस रुपये तकके कई जूते उसके सामने खोल दिये। रायने हर एक को हाथमें लेकर उलट-पलट कर देखा, दो एकको पैरमें पहन कर ग़ालीचे पर चला, परन्तु कोई जूता उसके मनको नहीं जँचा। जब दुकानदारके पास कोई और चीज़ दिखाने लायक नहीं रही तो उसने धीरेसे सिर हिला दिया।

"तो वही पहले वाला ले लीजिए, वही सबसे अच्छा है", दुकानदार कहने लगा।

रायने फिर सिर हिला दिया और पुराना जूता पहन कर उसके फ़ीते बाँधने लगा।

"दूसरी जगह देख लूँ, शायद कोई और चीज़ मिल जाय", उसने कहा।

नये जूतोंके ढेरमें उसका पुराना जूता बहुत ही बदनुमा लग रहा था। अपने तरुण सजातीयोंमें आकर वह जैसे लज्जासे कुण्ठित हो गया था और कह रहा था कि तुम्हारा अपना तो कुछ बनता बिगड़ता नहीं, पर दूसरेके तो मान अपमानकी कुछ चिंता कर लिया करो। रायने एक फ़ीता जोरसे कसा तो वह टूट कर आधा उसके हाथमें आ गया। उसने उसे उँगलीमें लपेट लिया और बाहर निकल आया।

बाहर आ कर उसे कितनी ही चीज़ोंका ध्यान आने लगा, जिन्हें उसने समय-समय पर खरीदना चाहा था। ह्वाइटवेज़में उसने एक बहुत खूबसूरत टेबल लैंप देखा था जिसका हल्का नीला शेड उसे बहुत पसंद था। आर्मी नेवी स्टोरमें एक सफ़ेद फलटेका चाक़ू रखा था जिसकी धार देखते हुए कुछ दिन हुए उसने अपनी उँगली पर ज़ख्म कर लिया था। फ्लोरा फ़ाउंटेन के फुटपाथ पर दो दिन पहले उसने एक लड़केके पास बहुत अच्छी नेकटाइयाँ देखी थीं। रास्तेमें चलते हुए अब भी कई चीज़ें उसका ध्यान खींच रही थीं। वह सोचने लगा कि यदि वह अपनी चायदानी खरीद ले तो उसकी चार छः आने रोज़की बचत हो सकती है, और उसकी टूटी हुई साबुनदानी रोज़ कपड़े गीले कर देती है, इसलिए एक नयी साबुनदानी भी उसके पास ज़रूर होनी चाहिए।

क्राफ़र्ड मार्केटमें एक चक्कर लगा कर वह बोरीबंदरकी तरफ़ चल दिया। बोरीबंदरके ट्राम जंक्शन पर आ कर वह काफ़ी देर ट्रामकी प्रतीक्षा में खड़े लोगोंको देखता रहा। उसे एक व्यक्तिके हाथमें बँधा हुआ घड़ीका जालीदार फ़ीता बहुत पसंद आया। एक लड़की सफ़ेद डोरेदार रूमालमें नाक साफ़ कर रही थी। रायने हाथ पतलूनकी जेबमें डाल कर अपनी

उँगलियोंको मसला । उसे महसूस हुआ कि इंसानके पास एक रूमालका होना भी बहुत ज़रूरी है ।

एक ट्राम फ़्लोरा फ़ाउण्टेनकी तरफ़से आयी और आधेसे अधिक लोगों को लेकर चली गयी । राय ट्राम स्टैंडसे हट कर फ़्लोरा फ़ाउण्टेनकी तरफ़ चल पड़ा । हार्नबी रोडसे गुज़रते हुए एक दुकान पर उसे बहुत भीड़ दिखायी दी तो वह अनजाने ही उस भीड़में सम्मिलित हो गया । अंदर पहुँच कर उसने देखा कि दुकान तो कपड़ेकी है, पर अधिकांश लोग वहाँ बरसातियाँ ख़रीद रहे हैं । चारों तरफ़ तरह तरहकी बरसातियोंके ढेर लगे थे । एक सेल्ज़मैन बता रहा था कि गबार्डिनकी बरसातीका दाम तीस रुपया है, रबड़की बरसातीका दाम पंद्रह रुपया है और प्लास्टिककी बरसातियाँ दस-दस रुपयेमें हैं ।

बरसातियोंको देख कर रायको ध्यान आया कि आते हुए रास्तेमें उस पर हल्की हल्की बूदें पड़ रही थी । दो तीन दिन पहले एक अच्छी बारिश हो चुकी थी । उसे याद आया कि पिछले साल बारिशमें कहीं आने जानेमें उसे कितनी तकलीफ़ होती रही है । कभी उसने एक छाता ख़रीदा था, जो ख़रीदनेके पंद्रह दिन बाद ही गुम हो गया था । महीना बीस दिन की बात हो तो आदमी किसी तरह चला भी ले, पर बारिशके पूरे चार महीने बिना बरसातीके निकालना लगभग असम्भव ही था । उसने सोचा कि अगर वह जूतेकी बजाय आठ दस रुपयेकी चप्पल ले ले और कमीज़ पतलूनके लिए भी कोई कपड़ा आठ दस रुपयेमें उसे मिल जाय तो दस रुपयेका बरसाती कोट लिया जा सकता था । उसने प्लास्टिककी बरसातीको हाथमें मसला और कंधे पर रख कर देखा और उसे रख कर सेल्ज़मैनसे कमीज़ोंका कपड़ा दिखानेके लिए कहा ।

"कैसा कपड़ा चाहिए ?" सेल्ज़मैनने पूछा ।

"कैसा भी हो", कहते हुए रायने चेष्टापूर्वक अपने दाँतोंको ओंठोंसे ढाँप लिया ।

"सफ़ेद पापलीन दिखाऊँ ?"

रायने सिर हिला दिया। सेल्ज़मैनने बढ़िया सफ़ेद पापलीनका थान उसके सामने खोल दिया। रायने उस कपड़ेका वज़न हाथ पर महसूस करते हुए उसका भाव पूछा।

"चार रुपया।"

"चार रुपया गज़ ?" रायके मुंहसे अनायास निकल गया। कह चुकनेके अगले क्षण उसे ध्यान आया कि उसके आश्चर्यकी ध्वनि कुछ और भी व्यंजित कर गयी है।

सेल्ज़मैनने गहरी नज़रसे उसकी ओर देखा। उसकी आँखसे मिलते ही रायकी आँखें दूसरी ओर घूम गयीं। सेल्ज़मैनके माथे पर बल पड़ गये और उसके दाँत आपसमें मिल गये। रायकी कमीज़के फटे हुए कालरों पर आँख स्थिर किये हुए उसने ओंठ चबा कर कहा, 'जी हाँ, चार रुपया गज़।

रायने चुपचाप सिर हिलाया। सेल्ज़मैन अब भी सीधी आँखोंसे उसकी तरफ़ देख रहा था। राय कपड़ेके थानके पाससे हट कर फिर प्लास्टिककी बरसाती देखने लगा। बरसातीको छोड़ कर उसने एक उड़ती हुई नज़र ऊपरके खानोंमें रखे छींटके थानों पर डाली और जैसे कुछ विमर्श करता हुआ बाहरकी तरफ़ चल पड़ा। चलते-चलते उसने लक्षित किया कि सेल्ज़मैन थान लपेटता हुआ उसीकी तरफ़ देखे जा रहा है। उसने दुकानसे उतरते हुए तीनों नोट जेबसे निकाल लिये और जैसे और कोई काग़ज़ ढूँढ़ना हो, इस तरह जेबमें टटोल कर उन्हें फिर वापस जेबमें रख लिया। उसके बाद फिर सेल्ज़मैनसे नज़र मिला कर वह आगे चल पड़ा।

बहुत हल्की-हल्की बूँदें अब भी पड़ रही थीं। अँधेरा हो जानेसे चारों तरफ़ सड़कों और दुकानोंकी बत्तियाँ जगमगाने लगी थीं। राय फ्लोरा फ़ाउण्टेनसे आगे निकाल कर दायें हाथको मुड़ गया। रास्तेमें दो एक जगह रुक कर उसने मोज़ेका जोड़ा, मफ़लर, बिस्कुटका डिब्बा, फ़ाउण्टेन पेन और सिगरेट केस जैसी कई छोटी-मोटी चीज़ोंके भाव पूछे, परन्तु यह दिक्क़त

हर जगह बनी रही कि जहाँ दाम ठीक थे वहाँ चीज़ अच्छी नहीं थी और जहाँ चीज़ मनपसंद की थी, वहाँ दाम ज़रूरतसे ज़्यादा थे। जिस समय वह उस बड़े रेस्तराँके सामने पहुँचा जिसके अंदरसे रंगीन कुर्सियाँ प्रायः उसे निमंत्रण देती प्रतीत हुआ करती थीं, तो वह चलते-चलते और सोचते-सोचते काफ़ी थक गया था। बहुत दिनोंसे उसकी उस रेस्तराँमें बैठ कर चाय पीनेकी इच्छा थी। गलेके बटनके पाससे कमीज़को ठीक करता हुआ वह रेस्तरांके अंदर चला गया।

रेस्तराँमें उस समय काफ़ी भीड़ थी। एक बैरा आकर उसे एक खाली मेज़के पास ले गया। राय हरे रंगकी बेंतकी कुर्सी पर बैठ कर वहाँके वातावरणको चकाचौंध नज़रोंसे देखने लगा। एक तरफ़ आर्केस्ट्रा बज रहा था और दो-एक जोड़े नाच रहे थे। आसपास बहुतसे लोग शीशेके गिलासोंमें बियर या ह्विस्की लिये बैठे थे। काली और सफ़ेद वर्दी वाले बैरे व्यस्तता-पूर्वक इधर उधर आ-जा रहे थे। उसके बैरेने दूसरी जगहसे मेन्यू उठा कर उसके सामने ला रखा। राय मेन्यू देखने लगा—उसकी आँखें पहले दायीं ओर छपी क़ीमतों पर पड़तीं, फिर बायीं ओर छपे नामों पर। बैरा आर्डर लेनेके लिए ज़रा झुक गया।

"अभी ठहरो", रायने मेन्यू पर नज़र गड़ाये हुए कहा और चेष्टापूर्वक ओंठ बंद करके दाँतोंको छिपा लिया। बैरा चला गया।

मेन्यू को एक सिरेसे दूसरे सिरे तक देख कर जब रायने आँख उठायी तो एक एंग्लो-इण्डियन लड़की बाहरसे अंदर आ रही थी। रायकी आँखें उसके शरीर पर स्थिर हो रहीं। उसने बिना बाँहका ब्लाउज़ पहन रखा था, जिससे उसका गोरा मांस दूर तक दिखायी दे रहा था। वह उड़ती हुई नज़र चारों तरफ़ डाल कर सीधी उसकी मेज़के पास ही आ गयी तो रायको कुछ आश्चर्य हुआ। जब उसने मुलायम स्वरमें उससे पूछा, "मैं यहाँ बैठ सकती हूँ?" तो उसने एक बार अड़बड़ा कर इधर-उधर देखा और यह लक्षित करके कि आस-पास कहीं जगह ख़ाली नहीं है, कुछ नम्रता, कुछ अभिलाषा और कुछ घबराहटके साथ कहा, "बैठिए।"

वह धन्यवाद दे कर पासकी कुर्सी पर बैठ गयी। रायको उसका बैठने, पर्स खोलने और पर्समेंसे सिगरेट केस निकालनेका ढंग बहुत आकर्षक लगा। उसकी लंबी पतली उँगलियाँ बहुत ही सुन्दर थीं।

लड़कीने अपना सिगरेट केस खोला और एक सिगरेट अपने मुँहमें लगा कर सिगरेट केस रायकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "सिगरेट लीजिए।"

रायने धन्यवाद दे कर सिगरेट ले लिया। अभ्यासवश उसका हाथ दियासलाईकी डिबिया निकालनेके लिए पतलूनकी जेबमें चला गया, पर तब तक लड़कीने अपना सिगरेट सुलगा कर लाइटर उसकी तरफ़ बढ़ा दिया।

रायकी समझमें नहीं आ रहा था कि उसे उस दयामयीसे किस तरह बात करनी चाहिए। बात करनेको तो ख़ैर कुछ नहीं था, कुछ भी बात की जा सकती थी, परन्तु बातको शुद्ध अंग्रेज़ीमें कह पाना बहुत बड़ी समस्या थी। वह व्यस्त रहनेके लिए लगातार सिगरेटके कश खींचता रहा। कुछ देर बाद लड़कीने आँखें ज़रा कुंचित करके मुँहसे धुआँ निकालते हुए पूछा, "इस तंबाकूकी गन्ध आपको कैसी लगती है?"

"बहुत अच्छी गंध है", यह वाक्य अंग्रेज़ीमें इतनी आसानीसे बन गया कि रायको स्वयं अपनी योग्यता पर आश्चर्य हुआ।

"यह फ्रांसीसी तंबाकू है", लड़की सिगरेटकी राख झाड़ती हुई बोली, "मेरा एक मित्र पेरिससे ये सिगरेट लाया था।"

"बहुत अच्छी गंध है", रायने फिर कहा और आँखोंमें प्रशंसात्मक भाव लाकर सिर हिलाया। ओंठोंको ज़रा गोल करके उसने चेष्टा की कि उसके मुँहसे भी धुआँ उसी तरह निकले जैसे उस रूपसीके मुँहसे निकलता है।

"आप नौकरी करते हैं?" लड़कीने पूछा।

"नहीं बिज़नेस करता हूँ", यह रायने इस लिए कह दिया कि अंग्रेज़ीमें यह उससे आसानीसे कहा गया।

"किस चीज़का बिज़नेस?"

"चीर-फाड़के ओज़ारोंका ।"

"उसमें तो काफ़ी नफ़ा होता होगा ।"

रायने कहना चाहा कि हाँ गुज़ारे लायक कुछ हो ही जाता है पर जल्दी में वह इसका ठीक अनुवाद नहीं सोच पाया, इसलिए उसने कह दिया, "हाँ, काफ़ी हो जाता है ।"

दो क्षणकी चुप्पीके बाद रायने अपनी ओरसे प्रश्न किया, "मैं आपका नाम जान सकता हूँ ?"

'जेनी डि' सूज़ा । और आपका नाम ?"

"राय ।"

"सिर्फ़ राय ?"

"नहीं, दामोदर दास चिंतामणि राय ।"

"डामोडर डास चिंटामोनी राय ?", जेनीने दोहराया । रायको इस रूपमें अपने नामका उच्चारण बहुत अच्छा लगा और उसके ओंठ फैलनेको हुए, पर दाँतोंका ध्यान आ जानेसे वह उन्हें संकुचित किये रहा ।

"आप भी कहीं काम करती हैं ?" उसने दूसरा प्रश्न पूछा ।

जेनी उसे बतलाने लगी कि वह एक फ़र्ममें असिस्टेंटके रूपमें काम करती है । काम उसके मनका नहीं है, फिर भी पैसेकी वजहसे उसे करना पड़ता है । शामको कुछ देर वह सैल्वेशन आर्मीका काम करती है । उसके बाद थकान दूर करनेके लिए किसी रेस्तराँमें चली आती है । वहाँ कभी कोई साथी मिल जाता है तो शाम अच्छी बीत जाती है ।

रायकी आँखें उसके शरीरकी गोलाइयों पर घूम रही थीं । चर्च गेट, रीगलके फ़ुट पाथ और काला घोड़ाके चौराहे पर ऐसी युवतियोंको उसने अनेक बार देखा था । उनके पाससे गुज़रते हुए शरीरकी दबी हुई भूख जैसे अंग-अंगमें लहरा जाती थी । परन्तु कभी उसके पास इतने पैसे नहीं हुए थे कि वह उस भूखको शान्त कर सकता । आज ज़िंदगीमें पहला अवसर था जब कि एक लड़की उसके बग़लमें बैठी थी, और बैठी ही नहीं थी, उसकी

आँखें उससे प्रस्ताव कर रही थीं और उसकी अपनी जेबमें दस दसके तीन नोट थे जिनकी सामर्थ्यसे वह उसे पा सकता था...

जेनीकी गोरी पिंडलियोंसे हटकर उसकी आँखें पल भर उसके हरे रंग के सैंडलों पर टिकी रहीं और वहाँसे उठ कर सहसा अपने पाँवमें पड़े जूतेसे टकरा गयीं, जो होटलके चिकने फ़र्श पर मटमैला दाग़ सा लगता था। जूतेके पंजे बीचसे बल खाकर थोड़ा थोड़ा ऊपरको उठ आये थे और मैलसे भरी एड़ियाँ कोनोंसे तीन चौथाई घिस चुकी थीं। पैरोंके पाससे ही पतलून के फुँदने निकल रहे थे, जिन्हें काटनेके लिए ही उसने क़ैंची ख़रीदनेकी बात सोची थी। रायने सिगरेटका टुकड़ा एशट्रेमें डालकर मल दिया और ओठोंको ज़बान फेर कर गीला किया।

बैरा फिर उसके पास जा कर थोड़ा झुक गया। उसकी आँखें जेनीकी आँखोंसे मिलीं।

"मेरे लिए जिनके साथ जिंजर", जेनीने कोमल स्वरमें कहा।

"इनके लिए जिनके साथ जिंजर", रायने दोहराया।

"और ?" बेरा उसी तरह झुका रहा।

"और अभी ठहर जाओ..." और वह फिर झुक कर मेन्यू देखने लगा। बैरा चला गया।

जेनीने दूसरा सिगरेट सुलगा कर सिगरेट केस उसकी ओर बढ़ाया तो उसने धन्यवाद देकर मना कर दिया। जेनीके मुँहसे हल्का नीला धुआँ बहता हुआ सा निकलता और कुछ देर हवामें लचक कर विलीन हो जाता। रायके हाथके पसीनेसे मेज़का शीशा कुछ गदला हो गया था। उसने हथेली के कोनेसे उसे साफ़ किया और हाथ हटा लिया। बैरा जिन और जिंजर लाकर जेनीके सामने रख गया। जेनी छोटे छोटे घूँट भरने लगी।

आर्केस्ट्रा पर नाचकी धुन बजनी आरम्भ हुई तो जेनीने फिर उसकी ओर देखा और पूछा, "आप नाचना पसन्द करेंगे ?"

"मैं नाचना नहीं जानता," रायने एक हाथकी उँगलियोंको दूसरे हाथ से मसलते हुए उत्तर दिया और उसकी आँखें झुक कर फिर जूते पर जा टिकीं। आस-पाससे बहुतसे लोग नाचनेके लिए उठ रहे थे। पासकी एक टेबलसे एक नवयुवकने जेनीके पास आकर उससे नाचनेका प्रस्ताव किया। जेनी गिलास उसी तरह छोड़ कर उठ खड़ी हुई और उसके साथ नाचने लगी। दूरसे उसके शरीरकी लचक रायको और भी आकर्षक लगी। नाचती हुई एक बार वह उसकी ओर देख कर मुसकरायी तो रायके मस्तिष्कमें भँवर-सा घूम गया। उसने तीनों नोटोंको जेबसे निकाल कर देखा और दूसरी जेबमें रख लिया। उसे कुछ गर्मी महसूस हो रही थी। उसने ऊपर छतके पंखेको देखा और उसे लगा कि वह बहुत धीमी गतिसे चल रहा है। उसका मन हुआ कि बैरेको बुला कर उससे पंखा तेज़ करनेको कहे, पर बैरेका ध्यान आते ही उसे मेन्यू का ध्यान हो आया। सामने जेनीका जिनका गिलास रखा था जिसमेंसे दो चार घूँट ही भरे गये थे। लोगोंके नाचनेके लिए उठ जानेसे आस-पास आधीसे अधिक कुर्सियाँ खाली हो गयी थी। सामने दरवाज़ेकी जालियोंमेंसे बाहर फुटपाथकी हल्की-हल्की झलक दिखायी दे रही थी। मेज़का शीशा उसकी बाँहके पसीनेसे फिर गदला हो गया था। आर्केस्ट्राकी धुन तेज़ हो गयी थी, लेकिन छत पर पंखा बहुत धीमे-धीमे चल रहा था। बाई ओर लगी घड़ीने जल्दी-जल्दी आठ बजा दिये। राय सहसा जैसे चौंक कर उठ खड़ा हुआ और दरवाज़ेकी ओर चल दिया।

जालीदार दरवाज़ेसे निकल कर जब वह फ़ुट पाथ पर पहुँचा तो उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि हल्की-हल्की बूंदें अब भी पड़ रही हैं। फुट पाथ गीला होकर और भी चिकना हो गया था। उसने पीछेकी ओर देखा। जालीदार दरवाज़ा बंद था। अंदर पड़ी रंगीन कुर्सियों पर एक नज़र डाल कर वह वहाँसे चल पड़ा। फ़्लोरा फ़ाउण्टेनके पाससे ट्रामकी पटरी पार करते हुए उसका पाँव फिसल गया और वह बड़ी मुश्किलसे गिरनेसे

बचा। परन्तु फिसलनेसे दायें पैरके जूतेका मुँह आगेसे खुल गया और वह बोलने लगा—तपत् तपत् तपत्...

राय एक-एक करके उन सब दुकानोंके पाससे गुज़र गया जिनमें आते हुए वह एक या दूसरी चीज़का भाव पूछनेके लिए रुका था। जूतेकी दुकानके बाहर शो केसमें रखे सफ़ेद-ब्राउन जूतेके पाससे तो वह जैसे आँख चुरा कर आगे निकला। किन्तु प्रिंसेस स्ट्रीटके मोड़ पर पहुँच कर वह भौंचक-सा खड़ा होकर पटरियों और ट्रामोंको देखने लगा। सामने थोड़ी ही दूरी पर वह इमारत थी जिसकी चौथी मंज़िल पर उसका कमरा था। उससे पहले बायीं ओर वह ढाबा था जहाँ वह रोटी खाया करता था। उसने मन ही मन हिसाब किया कि ढाबे वालेके उसकी ओर पुराने हिसाबमें तेईस चौबीस रुपयेके लगभग निकलते हैं। ढाबेके साथ ही पनवाड़ीकी दुकान थी जिसके नौ रुपयेमेंसे इस बार कुल पाँच रुपये ही चुकाये गये थे। इसके अतिरिक्त कुछ पैसे बिसातीके रहते थे। और पंद्रह रुपये नक़द उधारके थे, जो उसने चार महीने पहले तुलुजासे लिये थे। तुलुजा पिछले सप्ताह ही उससे अपने पैसोंके लिए तकाज़ा कर रहा था।

रायके क़दम ढाबेकी ओर बढ़ गये। वहाँसे खाना खा कर और पान वालेसे कैंचीकी डिबिया लेकर वह अपने कमरेमें आ गया। कमरेमें आकर उसने मेज़ और कुर्सियोंको कोनोंकी तरफ़ हटा दिया और छज्जेसे लाकर गद्दा फ़र्श पर बिछा लिया। तीनों नोट उसने जेबसे निकाल कर तकियेके नीचे रख दिये और जूता उतार कर गद्दे पर लेट गया। हवा बंद हो गयी थी और कमरेमें बहुत उमस हो रही थी। उसने उठ कर बत्ती बंद कर दी तो भी सामने घरकी खिड़की से रोशनी उसके कमरेमें आती रही। रोशनी उमसको और बढ़ा रही थी, जिससे उसकी तबीअत बेचैन हो रही थी। सामनेकी अलमारीमें चीर-फाड़के औज़ार चमक रहे थे। उधर कोनेमें मैले कपड़े गोल किये रखे थे जो सबके सब जर्जर हालतमें थे। कमरेमें उन कपड़ोंकी वजहसे, या वैसे ही एक गन्ध सी बस गयी थी। और सामने फ़र्श

पर उसका फटा हुआ जूता रखा था, जिसकी पिछली सीवनें पहलेसे ज़्यादा उघड़ी हुई मालूम होती थीं।

राय कई क्षण जूतेकी घिसी हुई एड़ियों और उघड़ी हुई सीवनोंको देखता रहा। फिर उसने आँखें मूँद लीं और वे सब चीज़ें एक-एक करके उसके सामने आने लगीं जिन्हें वह थोड़ी देर पहले बहुत पाससे देख कर आया था—सफ़ेद-ब्राउन जूता, बरसाती कोट, मोज़ा, सिगरेट केस, रंगीन कुर्सियाँ और...और जेनी डि सूज़ा, जिसकी उँगलियाँ बहुत पतली थीं और जिसके ओंठोंमेंसे निकलता हुआ नीला धुआँ बहुत खूबसूरत मालूम होता था..।

उसने आँखें खोलीं तो वे उधड़ी हुई सीवनें और घिसी हुई एड़ियाँ ही सामने थीं। उसने करवट बदल कर जूतेकी ओर पीठ कर ली और हाथ तकियेके नीचे नोटों तक पहुँचा कर आँखें धीरे-धीरे फिर मूँद लीं और सब चीज़ोंके बारेमें नये सिरेसे सोचने लगा...।

●

अपरिचित

कुहरेकी वजहसे खिड़कियोंके शीशे धुँधले पड़ गये थे। गाड़ी चालीस मीलकी रफ़्तारसे सुनसान अँधेरेको चीरती चली जा रही थी। खिड़कीसे सिर सटा कर भी बाहर कुछ दिखायी नहीं देता था, फिर भी मैं आँख गड़ा कर देखनेका प्रयत्न कर रहा था। कभी किसी पेड़की हल्की गहरी रेखा ही पाससे गुज़र जाती तो कुछ देख लेनेका सन्तोष होता। मनको उलझाये रखनेके लिए इतना ही काफ़ी था। पलकोंमें ज़रा नींद नहीं थी। गाड़ीको जाने कितनी देर बाद कहीं जा कर ठहरना था। जब और कुछ दिखायी नहीं देता तो अपना प्रतिबिम्ब तो कम-से-कम देखा ही जा सकता था। अपने प्रतिबिम्बके अतिरिक्त और भी कई प्रतिबिम्ब थे। ऊपरकी बर्थ पर सोये हुए व्यक्तिका प्रतिबिम्ब अजब बेबसीके साथ हिल रहा था। नीचे सामनेकी बर्थ पर बैठी हुई महिलाका प्रतिबिम्ब बहुत उदास था। उसकी भारी भारी पलकें पल भरके लिए ऊपर उठतीं और फिर नीचे झुक जातीं। आकृतियोंके अतिरिक्त कई बार नयी-नयी ध्वनियाँ ध्यान बँटा लेती थीं, जिनसे भान होता था कि गाड़ी अब पुल परसे जा रही है या मकानों की पंक्तिके आगेसे गुज़र रही है। बीच बीचमें सहसा इंजनकी सीटी चीख़ जाती, जिससे अँधेरा और एकान्त और गहरे प्रतीत होने लगते।

मैंने खिड़कीसे सिर हटा कर घड़ी की ओर देखा। सवा ग्यारह बजे थे।

सामने बैठी हुई महिलाकी आँखें बहुत सुनसान थीं। बीच बीचमें उनमें एक लहर-सी आती और विलीन हो जाती। वह जैसे आँखोंसे देख नहीं रही थी, सोच रही थी। उसकी बच्ची जो फ़रके कम्बलोंमें लिपट कर सोयी थी, ज़रा-ज़रा कुनमुनाने लगी। उसकी गुलाबी ऊनकी टोपी सिरसे उतर गयी थी। उसने दो एक बार पैर पटके, अपनी बँधी हुई

मुट्ठियाँ ऊपर उठायीं और सहसा रोने लगी । महिलाकी सुनसान आँखें उमड़ आयीं । उसने बच्चीके सिर पर टोपी ठीक कर दी और उसे कम्बलों समेत उठा कर छातीसे लगा लिया ।

मगर इससे बच्चीका रोना बंद नहीं हुआ । उसने बच्चीको हिला कर और दुलरा कर चुप कराना चाहा, पर फिर भी वह रोती रही तो उसने कम्बल थोड़ा ऊपर उठा कर उसके मुँहमें दूध दे दिया और उसे अपने साथ सटा लिया ।

मैंने फिर खिड़कीके साथ सिर टिका लिया । दूर एक बत्तियोंकी कतार नज़र आ रही थी । शायद वह कोई आबादी थी, या केवल सड़क ही थी । गाड़ी बहुत तेज़ चल रही थी और इंजन पास होनेके कारण कुहरे के साथ धुआँ भी खिड़कीके शीशों पर जमता जा रहा था । आबादी या सड़क, जो भी था, अब धीरे-धीरे पीछे रहा जा रहा था । शीशेमें दिखायी देते हुए प्रतिबिम्ब पहलेसे गहरे हो गये थे । महिलाकी आँखें बंद थीं और ऊपर लेटे हुए व्यक्तिकी बाँह ज़ोर-ज़ोरसे हिल रही थीं । शीशे पर मेरी साँसके फैलनेसे प्रतिबिम्ब और धुँधले हुए जा रहे थे । यहाँ तक कि एक बार सब आकृतियाँ अदृश्य हो गयीं । मैंने जेबसे रूमाल निकाल कर शीशे को पोंछ दिया ।

महिलाने आँखें खोल ली थीं और एक-टक सामनेकी ओर देख रही थी । उसके ओंठों पर हल्की-सी मधुर रेखा फैली थी, जो ठीक मुसकराहट नहीं थी । मुसकराहटसे बहुत कम व्यक्त उस रेखामें गम्भीरता भी थी और अवसाद भी—वह जैसे अनायास उभर आयी किसी स्मृतिकी रेखा मात्र थी । उसके माथे पर भी हल्की-सी सिकुड़न पड़ गयी थी ।

बच्ची जल्दी ही दूधसे हट गयी । उसने सिर उठा कर अपना बिना दाँतका मुँह खोल दिया और किलकारी मारती हुई माँकी छाती पर मुट्ठियों से प्रहार करने लगी । दूसरी ओरसे आती हुई एक गाड़ी तेज़ीसे गुज़री तो वह ज़रा सहम गयी, मगर गाड़ीके गुज़रते ही और भी मुँह खोल कर

किलकारी मारने लगी। बच्चीका चेहरा गदराया हुआ था और उसकी टोपीके नीचेसे भूरे रंगके हल्के-हल्के बाल नज़र आ रहे थे। उसकी नाक ज़रा छोटी थी, पर आँखें माँकी ही तरह गहरी और फैली हुई थीं। माँके गाल और कपड़े नोंच कर उसकी आँखें मेरी ओर घूम गयीं और वह बाहें हवामें झटकती हुई मेरी ओर देख कर किलकारियाँ मारने लगी।

महिलाकी पुतलियाँ उठीं और उसकी उदास आँखें पल भर मेरी आँखोंसे मिली रहीं। मुझे क्षणभरके लिए लगा कि मैं एक ऐसे क्षितिजको देख रहा हूँ, जिसमें गोधूलिके सभी हल्के गहरे रंग झिलमिला रहे हैं और जिसका दृश्यपट क्षणके हर शतांशमें बदलता जा रहा है...।

बच्ची मेरी ओर देख कर बहुत हाथ पटक रही थी, इसलिए मैंने बच्ची की ओर हाथ बढ़ा दिये और कहा, "आ बेटे, आ..."

मेरे हाथ पास आ जाने पर बच्चीके हाथोंका हिलना बन्द हो गया और उसके ओंठ रुआँसे हो आये।

महिलाने बच्चीके ओठोंको अपने ओठोंसे छुआ और कहा, "जा बिट्टू, जायगी ?"

लेकिन बिट्टूके ओठ और रुआँसे हो गये और वह माँके साथ सट गयी।

"पराये आदमीसे डरती है", मैंने खिसियाने स्वरमें कहा और हाथ हटा लिये।

महिलाके ओंठ भिंच गये और माथेके मांसमें खिंचाव आ गया। उसकी आँखें जैसे अतीतमें चली गयीं। फिर सहसा वे लौट आयीं और वह बोली, "नहीं, डरती नहीं। इसे असलमें आदत नहीं है। यह आज तक या मेरे हाथोंमें रही है या नौकरानीके हाथोंमें..." और वह उसके सिर पर झुक गयी। बच्ची उसके साथ सट कर आँख झपकने लगी। महिला उसे हिलाती हुई थपकियाँ देने लगी। बच्चीने आँखें मूँद लीं। महिला उसकी ओर देखती हुई जैसे चूमनेके लिए ओंठ बढ़ाये हुए उसे थपकियाँ देती रही। फिर उसने अनायास मुसकराकर उसे चूम लिया।

"बड़ी अच्छी है मेरी बिट्टू, झटसे सो जाती है", उसने जैसे अपनेसे कहा और मेरी ओर देखा। उसकी आँखोंमें उल्लास भर रहा था।

"कितनी बड़ी है यह बच्ची ?" मैंने पूछा।

" दस दिन बाद यह पूरे चार महीनेकी हो जायगी", वह बोली, "पर यह देखनेमें अभी छोटी लगती है। छोटी लगती है न ?"

मैंने आँखोंसे उसकी बातका समर्थन किया। उसके चेहरेसे अजब विश्वास और भोलापन झलकता था। मैंने उचक कर सोयी हुई बच्चीके गालको ज़रा सहला दिया। महिलाका चेहरा और वत्सल हो गया।

"लगता है आपको बच्चोंसे बहुत प्यार है", वह बोली, "आपके कितने बच्चे हैं ?"

मेरी आँखें उसके चेहरेसे हट गयीं। बिजलीकी बत्तीके पास एक कीड़ा उड़ रहा था।

"मेरे ?" मैंने मुसकरानेकी कोशिश करते हुए कहा, "अभी तो कोई नहीं, मगर..."

"मतलब ब्याह हुआ है, अभी बच्चे-अच्चे नहीं हुए", वह मुसकरायी, "आप मर्द लोग तो बच्चोंसे बचे रहना चाहते हैं, है न ?"

मैंने ओंठ सिकोड़ लिये और कहा, "नहीं, यह बात नहीं..."

"हमारे ये तो बच्चीको छूते भी नहीं," वह बोली, "कभी दस मिनिट के लिए भी उठाना पड़ जाय तो झल्ला पड़ते हैं। अब तो खैर वे इस मुसीबत से छूट कर बाहर ही चले गये हैं।" और सहसा उसकी आँखें छलछला आयीं। रुलाईकी वजहसे उसके ओंठ बिल्कुल उसकी बच्ची जैसे हो गये थे। फिर उसके ओंठों पर मुसकराहट आ गयी, जैसा अक्सर सोये हुए बच्चोंके साथ होता है। उसने आँखें झपक कर ठीक कर लीं और बोली, "वे डाक्टरेटके लिए इंगलैण्ड गये हैं। मैं उन्हें बंबईमें जहाज़ पर चढ़ा कर आ रही हूँ।...वैसे छः आठ महीनेकी ही बात है। फिर मैं भी उनके पास चली जाऊँगी।"

फिर उसने ऐसी नज़रसे मुझे देखा जैसे उसे शिकायत हो कि मैंने उसकी रहस्यकी बात क्यों जान ली ?

"आप बादमें अकेली जायँगी ?" मैंने पूछा, "इससे तो आप अभी साथ चली जातीं. . . ।"

उसके ओंठ सिकुड़ गये और आँखें फिर अन्तर्मुख हो गयीं । वह कई क्षण अपनेमें डूबी रही और उसी तरह बोली, "साथ तो नही जा सकती थी क्योंकि अकेले उनके जानेकी भी सुविधा नहीं थी । लेकिन उनको मैंने भेज दिया है । मैं चाहती थी कि उनकी कोई तो चाह मुझसे पूरी हो जाय ।. . . दीशीको बाहर जानेकी बहुत साध थी ।. . .अब छः आठ महीने मैं अपनी तनख़ाहमेंसे कुछ बचाऊँगी और थोड़ा बहुत कहींसे उधार लेकर अपने जानेका बंदोबस्त भी करूँगी ।"

उसने अपनी कल्पनामें डूबती उतराती आँखोंको सहसा सचेत कर लिया और फिर कुछ क्षण शिकायतकी नज़रसे मुझे देखती रही । फिर बोली, "अभी यह बिट्टू भी बहुत छोटी है न ? छः आठ महीनेमें यह बड़ी हो जायगी । मैं भी तब तक और पढ़ लूँगी । दीशीकी बहुत चाह है कि मै एम० ए० कर लूँ । मगर मैं ऐसी जड़ और नाकारा हूँ कि उनकी कोई चाह पूरी नहीं कर पाती । इसलिए मैंने उन्हें भेजनेके लिए अपने सब गहने बेच दिये है । अब मेरे पास मेरी बिट्टू रह गयी है ।" और वह उसके सिर पर हाथ फेरती हुई गर्वपूर्ण दृष्टिसे उसे देखती रही ।

बाहर वही सुनसान अँधेरा था, वही निरन्तर सुनायी देती हुई इंजनकी फक् फक् । शीशेसे आँख गड़ा लेने पर भी दूर तक वीरानगी ही वीरानगी नज़र आती थी ।

परन्तु उस महिलाकी आँखोंमें जैसे संसार भरकी वत्सलता सिमट कर आ गयी थी । वह फिर कई क्षण अपनेमें डूबी रही । फिर उसने एक साँस ली और बच्चीको अच्छी तरह कम्बलोंमें लपेट कर सीट पर लिटा दिया ।

ऊपरकी सीट पर लेटा हुआ व्यक्ति खुर्राटे भरने लगा था । एक बरा

वह नीचे गिरनेको हुआ, पर सहसा हड़बड़ा कर सँभल गया । कुछ ही देर बाद वह और ज़ोरसे खुर्राटे भरने लगा ।

"लोगोंको जाने सफ़रमें कैसे इतनी गहरी नींद आ जाती है ?" वह बोली, "मुझे दो दो रातें सफ़र करना हो तो भी मैं नहीं सो पाती । अपनी अपनी आदत होती है । क्यों ?"

"हाँ, आदतकी ही बात है" मैंने कहा, "कुछ लोग बहुत निश्चिन्त होकर जीते है और कुछ होते हैं कि..."

"बग़ैर चिन्ताके जी ही नहीं सकते !" और वह हँस दी । उसकी हँसीका स्वर भी बच्चों जैसा ही था । उसके दाँत बहुत छोटे-छोटे और चमकीले थे । मैंने भी उसकी हँसीमें साथ दिया ।

"मेरी बहुत ख़राब आदत है", वह बोली, "मैं बात बेबातके सोचती रहती हूँ । कभी-कभी तो मुझे लगता है कि मै सोच-सोच कर पागल हो जाऊँगी । ये मुझसे कहते है कि मुझे लोगोंसे मिलना-जुलना चाहिए, हँसना, बोलना चाहिए, मगर इनके सामने मैं ऐसी गुम सुम हो जाती हूँ कि क्या कहूँ ? वैसे अकेलेमें भी मै ज़्यादा नहीं बोलती, लेकिन इनके सामने तो ऐसी चुप्पी छा जाती है जैसे मुँहमें ज़बान ही न हो ।...अब देखिए, यहाँ कैसे लतर लतर बोल रही हूँ !" और वह मुसकरायी । उसके चेहरे पर हल्की-सी संकोचकी रेखा भी आ गयी ।

"रास्ता काटनेके लिए बात करना ज़रूरी हो जाता है", मैंने कहा, "ख़ास तौर पर जब नींद न आ रही हो ।"

उसकी आँखें पल भर फैली रहीं । फिर वह गरदन ज़रा झुका कर बोली, "ये कहते है कि जिसके मुँहमें ज़बान न हो उसके साथ पूरी ज़िंदगी कैसे काटी जा सकती है ? ऐसे इन्सानमें और एक पालतू जानवरमें क्या फ़र्क़ है ? मैं हज़ार चाहती हूँ कि इन्हें खुश दिखायी दूँ और इनके सामने कोई न कोई बात करती रहूँ,लेकिन मेरी सारी कोशिश बेकार चली जाती है । इन्हें फिर ग़ुस्सा हो आता है और मैं रो देती हूँ । इन्हें मेरा रोना बहुत बुरा लगता है ।"

कहते कहते उसकी आँखोंमें दो आँसू झलक आये जिन्हें उसने अपनी साड़ीके पल्लेसे पोंछ लिया ।

"मैं बहुत पागल हूँ" वह फिर बोली,"ये जितना मुझे रोकते हैं, मैं उतना ही ज़्यादा रोती हूँ । दर असल ये मुझे समझ नहीं पाते । मुझे बात करना नहीं अच्छा लगता, फिर जाने क्यों ये मुझे बात करनेके लिए मजबूर करते हैं ?" और फिर माथेको हाथसे दबाये हुए बोली, "आप भी अपनी पत्नीसे ज़बर्दस्ती बात करनेके लिए कहते हैं ?"

मैंने पीछे टेक लगा कर क धे ज़रा सिकोड़े और हाथ बग़लोंमें दबाये हुए बत्तीके पास उड़ते हुए कीड़ेको देखता रहा । फिर मैंने सिरको ज़रा-सा झटक कर उसकी ओर देखा । वह उत्सुक आँखोंसे मेरी ओर देख रही थी ।

"मैं ?" मैंने मुसकरानेकी चेष्टा करते हुए कहा, "मुझे यह कहनेका कभी अवसर ही नहीं मिल पाता । मैं बल्कि पाँच सालसे यह चाह रहा हूँ कि वह ज़रा कम बातें किया करे । मैं समझता हूँ कि कई बार इंसान चुप रह कर ज़्यादा बात कह सकता है । ज़बानसे कही हुई बातमें वह रस नहीं होता जो आँखकी चमकसे, या ओंठोंके कंपनसे या माथेकी एक लकीरसे कही हुई बातमें होता है । मैं जब उसे यह समझाना चाहता हूँ तो वह मुझ से पहले विस्तारपूर्वक बता देती है कि ज़्यादा बात करना इंसानकी निश्छलता का प्रमाण है और कि मैं इतने बरसोंमें अपने प्रति उसकी सद्भावनाको समझ ही नही सका ! वह दर-असल कालेजमें लेक्चरर है और उसे घरमें भी लेक्चर देनेकी आदत है ।"

"ओह !" और वह थोड़ी देर दोनों हाथोंमें मुँह छिपाये रही । फिर बोली, "ऐसा क्यों होता है, यह मेरी समझमें नहीं आता । मुझे दीशीसे यही शिकायत है कि वे मेरी बात समझ नही पाते । मैं कई बार उनके बालोंसे अपनी उँगलियोंसे बात करना चाहती हूँ, कई बार उसके घुटनों पर सिर रख कर मुँदी हुई आँखोंसे उनसे कितना कुछ कहना चाहती हूँ, लेकिन

उन्हें यह सब अच्छा नहीं लगता । वे कहते हैं कि यह सब गुड़ियोंका खेल है, उनकी पत्नीको जीता-जागता इंसान होना चाहिए । और मैं इंसान बननेकी बहुत कोशिश करती हूँ लेकिन नहीं बन पाती, कभी नहीं बन पाती । इन्हें मेरी कोई आदत अच्छी नहीं लगती । मेरा मन होता है कि चाँदनी रातमें खेतोंमें घूमूँ, या नदीमें पैर डाल कर घंटों बैठी रहूँ, मगर ये कहते हैं कि ये सब आइडल मनकी वृत्तियाँ हैं । इन्हें क्लब, संगीत-सभाएँ और डिनर पार्टियाँ अच्छी लगती हैं । मैं इनके साथ वहाँ जाती हूँ तो मेरा दम घुटने लगता है । मुझे वहाँ ज़रा आत्मीयता प्रतीत नहीं होती । ये कहते हैं कि तू पिछले जन्ममें मेंडकी थी जो तुझे क्लबमें बैठनेकी बजाय खेतोंमें मेंडकोंकी आवाज़ें सुनना ज़्यादा अच्छा लगता है । मैं कहती हूँ कि मैं इस जन्ममें भी मेंडकी हूँ । मुझे बरसातमें भीगना बहुत अच्छा लगता है और भीग कर मेरा मन गुनगुनानेको होने लगता है, हालाँकि मुझे गाना नहीं आता । मुझे क्लबमें सिगरेटके धुएँमें घुट कर बैठे रहना नहीं अच्छा लगता । वहाँ मेरे प्राण गलेको आने लगते हैं ।"

उस थोड़ेसे समयमें ही मुझे उसके चेहरेका उतार चढ़ाव काफ़ी परिचित लगने लगा था । उसकी बात सुनते हुए मेरे हृदय पर हल्की उदासी छाने लगी थी, हालाँकि मैं जानता था कि वह कोई भी बात मुझे लक्षित करके नहीं कह रही है– वह अपनेसे बात करना चाह रही है और मेरी उपस्थिति उसके लिए एक बहाना मात्र है । मेरी उदासी भी उसके लिए न होकर अपने लिए ही थी, क्योंकि बात उससे करते हुए भी मैं सोच मुख्य रूपसे अपने विषयमें ही रहा था । मैं पाँच सालसे मंज़िल दर मंज़िल विवाहित जीवनमेंसे गुज़रता आ रहा था, रोज़ यही सोचते हुए कि शायद आने वाला कल ज़िंदगीके इस ढांचेको बदल दे । सतही तौर पर हर चीज़ ठीक थी, कहीं कुछ ग़लत नहीं था, मगर आन्तरिक तौर पर जीवन कितना संकुल और विषमताकी रेखाओंसे भरा था ! मैंने विवाहके पहले दिनोंमें ही जान लिया था कि नलिनी मुझसे विवाह करके सुखी नहीं हो सकी, क्योंकि मैं

जीवनमें उसकी कोई भी महत्वाकांक्षा पूरी करनेमें सहायक नही हो सकता। वह एक भरा पूरा घर चाहती थी, जिसकी वह शासिका हो और ऐसा सामाजिक जीवन चाहती थी जिसमें उसे महत्त्वका दर्जा प्राप्त हो। वह अपने से स्वतंत्र अपने पतिके मानसिक जीवनकी कल्पना नही करती थी। उसे मेरी भटकनेकी वृत्ति और साधारणका मोह मानसिक विकृतियाँ प्रतीत होती थी, जिन्हें वह अपने अधिक स्वस्थ जीवन-दर्शनके बलसे दूर करना चाहती थी। उसने इस विश्वासके साथ जीवन आरम्भ किया था कि वह मेरी त्रुटियोंकी क्षतिपूर्ति करती हुई बहुत शीघ्र मुझे सामाजिक दृष्टिसे एक सफल व्यक्ति बननेकी दिशामें प्रेरित करेगी। उसकी दृष्टिमें यह मेरे वंशगत सस्कारोका दोष था जो मैं इतना अन्तर्मुख हो रहता था और इधर-उधर मिल जुल कर आगे बढ़नेका प्रयत्न नही करता था। वह इस परिस्थितिको सुधारना चाहती थी, पर परिस्थिति सुधरनेकी बजाय बिगड़ती गयी थी। वह जो कुछ चाहती थी, वह मैं नहीं कर पाता था और जो कुछ मैं चाहता था, वह उससे नही होता था। इस से हममें अक्सर बहस-मुबाहिसा हो जाता था और कई बार दीवारोंसे सिर टकरानेकी नौबत आ पहुँचती थी। परन्तु यह सब हो चुकने पर नलिनी बहुत जल्दी स्वस्थ हो जाती थी और उसे फिर मुझसे यह शिकायत होती थी कि मैं दो-दो दिन अपनेको उन साधारण घटनाओके प्रभावसे मुक्त क्यों नहीं कर पाता। परन्तु मैं दो-दो दिन क्या, कभी भी उन घटनाओंके प्रभावसे मुक्त नही होता था और रात को जब वह सो जाती थी तो घंटों तकियेमे मुँह छिपा कर कराहता रहता था। नलिनी आपसी झगड़ेको उतना अस्वाभाविक नही समझती थी जितना मेरे रात भर जागनेको और उसके लिए मुझे नर्व टानिक लेनेकी सलाह दिया करती थी। विवाहके पहले दो वर्ष इसी तरह कटे थे और उसके बाद हम लोग अलग अलग जगह काम करने लगे थे। हालाँकि समस्या ज्योंकी त्यों वर्तमान थी और जब कभी हम इकट्ठे होते, वही पुरानी जिंदगी लौट आती थी, फिर भी नलिनीका यह विश्वास अभी कम नहीं हुआ था कि

कभी न कभी मेरे सामाजिक संस्कारोंका उद्‌बोध अवश्य होगा और तब हम साथ रह कर सुखी दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर सकेंगे ।

"आप कुछ सोच रहे हैं ?" उस महिलाने अपनी बच्चीके सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा ।

मैं सहसा चेतन हुआ और मैंने कहा, "हाँ, मैं आप ही की बातको लेकर सोच रहा था । कुछ लोग होते हैं, जिनसे दिखावटी शिष्टाचारके संस्कार आसानीसे नहीं ओढ़े जाते । आप भी शायद उन्हीं लोगोंमेंसे हैं ।"

"मैं नहीं जानती", वह आँखें मूँद कर बोली, "मगर मैं इतना जानती हूँ कि मैं बहुतसे परिचित लोगोंके बीच अपनेको अपरिचित, बेगाना और विजातीय अनुभव करती हूँ । मुझे लगता है कि मुझमें ही कुछ कमी है । मैं इतनी बड़ी हो कर भी वह कुछ नहीं जान समझ पायी जो लोग छुटपनमें ही सीख जाते हैं । दीशीका कहना है कि मैं सामाजिक दृष्टिसे बिल्कुल मिसफ़िट हूँ ।"

"आप भी यही समझती हैं ?" मैंने पूछा ।

"कभी समझती हूँ, कभी नहीं भी समझती", वह बोली, "एक ख़ास तरहके समाजमें मैं ज़रूर अपनेको मिसफ़िट अनुभव करती हूँ । परन्तु... कुछ ऐसे लोग हैं जिनके बीच जाकर मुझे बहुत अच्छा लगता है । ब्याहसे पहले मैं दो-एक बार कालेजकी पार्टीके साथ पहाड़ों पर घूमनेके लिए गयी थी । वहाँ सब लोगोंको मुझसे यही शिकायत रहती थी कि मैं जहाँ बैठ जाती हूँ, वहींकी हो रहती हूँ । मुझे पहाड़ी बच्चे बहुत अच्छे लगते थे । मैं उनके घरके लोगोंसे भी बहुत जल्दी दोस्ती कर लेती थी । एक पहाड़ी परिवारकी मुझे आज तक याद आती है । उस परिवारके बच्चे मुझसे इतना घुल-मिल गये थे कि मैं बड़ी मुश्किलसे उन्हें छोड़ कर उनके घरसे चल पायी । मैं दो घंटे उन लोगोंके पास रही थी । मैंने दो घंटेमें उन्हें नहलाया-धुलाया भी और उनके साथ खेलती भी रही । बहुत ही अच्छे बच्चे थे वे । हाय, उनके चेहरे इतने लाल थे कि क्या कहूँ ? मैंने उनकी

माँसे कहा कि वह अपने छोटे लड़के किशनूको मेरे साथ भेज दे । वह हँस कर बोली कि तुम सभीको ले जाओ, यहाँ कौन इनके लिए तोशे रखे हैं ! यहाँ तो दो बरसमें इनकी हड्डियाँ निकल आयेंगी, वहाँ खा पी कर अच्छे तो रहेंगे । मुझे उसकी बात सुन कर रुलाई आनेको हो गयी ।...मै अकेली होती तो शायद कई दिनोंके लिए उन लोगोंके पास रह जाती । ऐसे लोगों में जा कर मुझे बहुत अच्छा लगता है ।...अब तो आपको भी लग रहा होगा कि कितनी अजीब हूँ मैं ! ये कहा करते हैं कि मुझे किसी अच्छे मनोविद्से अपना विश्लेषण कराना चाहिए, नहीं तो किसी दिन मैं पागल होकर पहाड़ों पर भटकती फिरूँगी !"

"यह तो अपने-अपने निर्माणकी बात है", मैंने कहा, "मुझे खुद आदिम संस्कारोंके लोगोंके बीच रहना बहुत अच्छा लगता है । मैं आज तक एक जगह घर बना कर नहीं रह सका और न ही आशा है कि कभी रह सकूँगा । मुझे अपनी ज़िंदगीकी जो रात सबसे ज़्यादा याद आती है, वह रात मैंने एक पहाड़ी गूजरोंकी बस्तीमें बितायी थी । उस रात उस बस्तीमें एक ब्याह था, इसलिए सारी रात वे लोग शराब पीते रहे और नाचते रहे । मुझे बहुत आश्चर्य हुआ जब मुझे बादमें बताया गया कि वे गूजर दस दस रुपयेके लिए इंसानका खून भी कर देते हैं !"

"आपको सचमुच इस तरहकी ज़िंदगी अच्छी लगती है ?" उसने कुछ आश्चर्य और अविश्वासके साथ पूछा ।

"आपको शायद खुशी हो रही है कि पागल होनेकी उम्मीदवार आप अकेली ही नहीं हैं", मैंने मुसकरा कर कहा । वह भी मुसकरायी । उसकी आँखें सहसा भावनापूर्ण हो उठीं । उस एक क्षणमें मुझे उन आँखोंमें न जाने कितना कुछ दिखायी दिया—करुणा, क्षोभ, ममता, आर्द्रता, ग्लानि, भय, असमंजस और सौहार्द ! उसके ओंठ कुछ कहनेके लिए काँपे, लेकिन काँप कर ही रह गये । मैं भी चुपचाप उसे देखता रहा । कुछ क्षणोंके लिए मुझे महसूस हुआ कि मेरा मस्तिष्क बिल्कुल खाली है और मुझे पता नहीं

कि मैं क्या कह रहा था और आगे क्या कहना चाहता था। उसकी आँखों में सहसा सूनापन भरने लगा और आधे क्षणमें वह इतना बढ़ गया कि मैं ने उसकी ओरसे आँखें हटा लीं।

बत्तीके पास उड़ता हुआ कीड़ा उसके साथ सट कर झुलस गया था।

बच्ची नींदमें मुसकरा रही थी।

खिड़कीके शीशे पर इतनी धुंध जमा हो गयी थी कि उसनें अपना चेहरा भी नहीं दिखायी देता था।

गाड़ीकी रफ़्तार धीमी हो रही थी। कोई स्टेशन आ रहा था। दो एक बत्तियाँ तेज़ीसे निकल गयीं। मैंने खिड़कीका शीशा थोड़ा उठा दिया। बाहरसे आती हुई बर्फ़ानी हवाके स्पर्श ने जैसे स्नायुओंको सहला दिया। गाड़ी एक बहुत नीचे प्लेट फ़ार्मके बराबर खड़ी हो रही थी।

"यहाँ थोड़ा पानी मिल जायगा ?"

मैंने चौंक कर देखा कि वह अपनी टोकरीमेंसे काँचका गिलास निकाल कर अनिश्चित भावसे अपने हाथमें लिये हुए है। उसके चेहरेकी रेखाएँ पहलेसे गहरी हो रही थीं।

"आपको पानी पीनेके लिए चाहिए ?" मैंने पूछा।

"हाँ। कुल्ला करूँगी या पिऊँगी। न जाने क्यों ओंठ कुछ चिपक से रहे हैं। बाहर इतनी ठंड है, फिर भी..."

"मै देखता हूँ अगर मिल जाय तो.."

कहकर मैंने गिलास उसके हाथसे ले लिया और जल्दीसे प्लेटफ़ार्म पर उतर गया। न जाने कैसा सुनसान स्टेशन था कि कहीं भी कोई आकृति दिखायी नहीं दे रही थी। प्लेटफ़ार्म पर जाते ही हवाके झोंकोंसे हाथ पैर सुन्न होने लगे। मैंने कोटके कालर खड़े कर लिये। प्लेटफ़ार्मके जँगलेके बाहरसे फैलकर ऊपर आये हुए दो एक वृक्ष हवामें सरसरा रहे थे। इंजन के भाप छोड़नेसे लंबी शूं-ऊँ की आवाज़ सुनायी दे रही थी। शायद वहाँ गाड़ी सिग्नल न मिलनेकी वजहसे ही रुक गयी थी।

दूर कई डिब्बे पीछे मुझे एक नल दिखायी दिया और मैं तेज़ीसे उसकी ओर चला। ईंटोंके प्लेटफ़ार्म पर अपने जूतेकी एड़ियोंका शब्द मुझे बहुत अपरिचित-सा लग रहा था। मैंने चलते-चलते गाड़ीकी ओर देखा। किसी खिड़कीसे कोई चेहरा नहीं झाँक रहा था। मैं नलके पास जाकर गिलासमें पानी भरने लगा। तभी हल्की-सी सीटी देकर गाड़ी एक झटके के साथ चल पड़ी। मैं भरा हुआ पानीका गिलास लेकर अपने डिब्बेकी ओर दौड़ा। मुझे दौड़ते हुए लगा कि मैं उस डिब्बे तक नहीं पहुँच पाऊँगा और बिना सामानके सर्दीमें उस अँधेरे और सुनसान प्लेटफ़ार्म पर रात बितानी होगी। यह सोच कर मैं और भी तेज़ दौड़ने लगा। किसी तरह मैं अपने डिब्बेके दरवाज़ेके बराबर पहुँच गया। दरवाज़ा खुला था और वह दरवाज़ेके पास ही खड़ी थी। उसने हाथ बढ़ाकर गिलास मुझसे पकड़ लिया। फ़ुटबोर्ड पर चढ़ते हुए एक बार मेरा पैर ज़रा फिसला, पर दूसरे ही क्षण मैं स्थिर होकर खड़ा हो गया। इंजन तेज़ होनेकी चेष्टा में अभी हल्के-हल्के झटके दे रहा था और ईंटोंके प्लेटफ़ार्मके स्थान पर अब नीचे अस्पष्ट गहराई दिखायी देने लगी थी।

"अन्दर आ जाइये", उसके ये शब्द सुन कर मुझे अहसास हुआ कि फ़ुट बोर्डसे आगे भी कुछ गन्तव्य है। डिब्बेके अन्दर क़दम रखते हुए मेरे घुटने ज़रा ज़रा काँप रहे थे।

अपनी जगह पर आकर मैंने टाँगें सीधी करके पीछेको टेक लगा ली। कुछ क्षण बाद मैंने आँखें खोलीं तो मुझे लगा कि वह शायद मुँह धोकर आयी है। फिर भी उसके चेहरे पर बहुत मुर्दनी छा रही थी। मेरे भी ओंठ सूख रहे थे, फिर भी मैं थोड़ा मुसकराया।

"क्या बात है, आपका चेहरा ऐसा क्यों हो रहा है?" मैंने पूछा।

"मैं कितनी मनहूस हूँ..." कहकर उसने अपना निचला ओंठ ज़रा-सा काट लिया।

"क्यों?"

"अभी मेरी वजहसे आपको कुछ हो जाता..."

"यह ख़ूब सोचा आपने !"

"नहीं। मैं हूँ ही ऐसी..." वह बोली, "ज़िन्दगी में हर एकको दुःख ही दिया है। अगर कहीं आप न चढ़ पाते..."

"तो ?"

"तो ?" उसने ओंठ ज़रा सिकोड़े, "तो मुझे पता नहीं...पर..."

उसने ख़ामोश रहकर आँखें झुका लीं। मैंने लक्षित किया कि उसकी साँस जल्दी जल्दी चल रही है। मैंने उस समय अनुभव किया कि वास्तविक संकटकी अपेक्षा कल्पनाका संकट कितना बड़ा और ख़तरनाक होता है। शीशा थोड़ा उठा रहनेसे खिड़कीसे हवा आ रही थी। मैंने खींचकर शीशा नीचे कर दिया।

"आप क्यों गये थे पानी लानेके लिए ? आपने मना क्यों नहीं कर दिया ?" उसने पूछा।

उसके पूछनेके लहजेसे मुझे हँसी आ गयी।

"आप ही ने तो कहा था..."

"मैं तो मूर्ख हूँ, कुछ भी कह देती हूँ। आपको तो सोचना चाहिए था।"

"अच्छा, मैं अपनी ग़लती माने लेता हूँ।"

इससे उसके मुरझाये हुए ओंठों पर भी मुसकराहट फैल गयी।

"आप भी कहेंगे यह कैसी लड़की है", उसने अन्तर्भावसे मुसकराते हुए कहा, "सच कहती हूँ मुझे ज़रा अक़्ल नहीं है। इतनी बड़ी हो गयी हूँ पर अक़्ल अभी बालिश्त भर भी नहीं है—सच !"

मैं फिर हँस दिया।

"आप हँसते क्यों हैं ?" उसने फिर शिकायतके स्वरमें पूछा।

"मुझे हँसनेकी आदत है !" मैंने कहा।

"हँसना अच्छी आदत नहीं है।"

मुझे इस बात पर फिर हँसी आ गयी।

वह शिकायत भरी दृष्टिसे मुझे देखती रही।

गाड़ीकी रफ़्तार फिर बहुत तेज़ हो गयी थी। ऊपरकी बर्थ पर लेटा हुआ व्यक्ति सहसा हड़बड़ा कर उठ बैठा और ज़ोर-ज़ोर से खाँसने लगा। खाँसीका दौरा शान्त होने पर उसने कुछ क्षण छातीको हाथसे दबाये रखा और फिर भारी आवाज़में पूछा, "क्या बजा है ?"

"पौने बारह", मैंने उसकी ओर देख कर उत्तर दिया।

"कुल पौने बारह ?" उसने निराश स्वरमें कहा और फिर लेट गया। कुछ ही देरमें वह फिर खुर्राटे भरने लगा।

"आप भी थोड़ी देर सो जाइए।" वह पीछे टेक लगाये शायद कुछ सोच रही थी या केवल देख ही रही थी। उसने उसी मुद्रामें अनुरोध किया।

"आपको नींद आ रही है, आप सो जाइए", मैंने कहा।

"मैंने आपसे कहा था न मुझे गाड़ीमें नींद नहीं आती। आप सो जाइए।"

मैंने बिस्तर पर लेट कर कम्बल ऊपर ले लिया। मेरी आँखें देर तक शून्य भावसे बत्तीको देखती रहीं, जिसके साथ झुलसा हुआ कीड़ा चिपक कर रह गया था।

"रज़ाई भी ले लीजिए, काफ़ी ठंड है", उसने कहा।

"नहीं, अभी ज़रूरत नहीं है। मैं बहुतसे गर्म कपड़े पहने हूँ," मैंने कहा।

"ले लीजिए, नहीं बादमें ठिठुरते रहिएगा।"

"नहीं ठिठरूँगा नहीं", मैंने कम्बल गले तक लपेटते हुए कहा, "और थोड़ी थोड़ी ठंड लगती रहे तो अच्छा रहता है।"

"बत्ती बुझा दूँ ?" कुछ क्षण बाद उसने पूछा।

"नहीं, रहने दीजिए।"

"नहीं, बुझा देती हूँ, ठीकसे सो जाइए।" और उसने उठकर बत्ती बुझा दी। मैं काफ़ी देर अँधेरेमें छतकी ओर देखता रहा। फिर मुझे नींद आने लगी।

शायद रात आधीसे अधिक बीत चुकी थी जब इंजनके भोंपूकी आवाज़ से मेरी नींद खुली। वह आवाज़ कुछ ऐसी भारी थी कि मेरे सारे शरीरमें एक सिहरन सी भर गयी। पिछले किसी स्टेशन पर इंजन बदल गया था।

गाड़ी धीरे-धीरे चलने लगी तो मैंने सिर थोड़ा ऊँचा उठाया। सामने की सीट उस समय ख़ाली थी। वह महिला न जाने किस स्टेशन पर उतर गयी थी। वह इसी स्टेशन पर न उतरी हो, यह सोचकर मैंने खिड़कीका शीशा उठाकर बाहर देखा। प्लेटफ़ार्म बहुत पीछे रह गया था और एक बत्तियोंकी क़तारके अतिरिक्त कुछ स्पष्ट दिखायी नहीं दे रहा था। मैंने शीशा फिर खींच लिया। अन्दरकी बत्ती अब भी बुझी हुई थी। बिस्तरमें नीचेको सरकते हुए मैंने लक्षित किया कि मैं कम्बलके अतिरिक्त अपनी रज़ाई भी लिये हूँ, जिसे अच्छी तरह कम्बलके साथ मिला दिया गया है। उष्णता की अनेक सिहरनें एक साथ मेरे शरीरमें भर गयीं।

ऊपरकी बर्थपर लेटा हुआ व्यक्ति उसी तरह ज़ोर-ज़ोरसे ख़ुर्राटे भर रहा था।

●

हवामुर्ग़

अप्रैलके महीने में बर्फ़का पड़ना अस्वाभविक नहीं था, फिर भी रेस्ट-हाउसका चौकीदार संतराम सबेरेसे कितनी बार अपने मिलनेवालोंसे कह चुका था, "देखो जी, कैसी अनहोनी बात हो रही है ? ये कोई बर्फ़ पड़नेके दिन हैं ? मेरा ख़्याल है, इसका आजके इलेक्शन पर ज़रूर असर पड़ेगा । घरसे निकलना ही मुश्किल है, वोट देने कौन आयगा ?"

वैसे उसे स्वयं विश्वास नहीं था कि लोग वोट देने नहीं आयँगे, पर बार-बार यह बात कह कर उसे कुछ संतोषका अनुभव अवश्य होता था । तीन बजेके लगभग एक भारी-भरकम बाबू रेस्ट-हाउसके दो नंबर कमरेमें आकर ठहरा, तो उसका सामान खोलते हुए भी उसने कहा, "बाबू जी, आगे कभी अप्रैलके महीनेमें आपने इतनी बर्फ़ पड़ती देखी है ?"

पर इससे पहले कि वह बातके उत्तरार्ध तक पहुँच पाता, बाबूने उसे आदेश दिया कि वह भागकर उसके लिए एक गिलास गर्म पानी ले आय, क्योंकि उसे दाँत साफ़ करने हैं । संतराम 'अभी लाया जी' कहकर चला गया, और जब वह लौटकर आया तो बाबूने उसे चाय बनाकर लानेका आदेश दे दिया ।

चाय लाकर प्यालीमें उँडेलते हुए संतरामने दूसरी तरह बात आरंभ की, "बाबूजी, आज यहाँ पर म्युनिसिपल कमेटीका इलेक्शन हो रहा है ।" और अपनी बातमें बाबूकी रुचि जागृत करनेके लिए उसने तत्परता दिखलाते हुए पूछा, "चीनी एक चम्मच लेंगे, कि दो चम्मच ?"

"डेढ़ चम्मच !" बाबूने बिना ज़रा भी रुचि प्रदर्शित किये कहा ।

संतरामने चायमें चीनी मिलायी और प्याली बाबूके हाथमें देते हुए कहा, "इस बार हमारे रेस्ट-हाउसका जमादार भी हरिजन टिकट पर इलेक्शनके लिए खड़ा हुआ है ।"

"अच्छा !" बाबूने चायका घूँट भरते हुए कहा, "देखो, वह मेरे जूते रखे हैं, उन पर पालिश कर देना ।"

संतराम बैठ कर जूतों पर ब्रशसे पालिश लगाने लगा । पालिश लगाते हुए उसने कहा, "पर जी, न तो यह जमादार ख़ास पढ़ा-लिखा है और न ही यह कभी जेल गया है, वैसे भी जातका भंगी है—भला ऐसे आदमी का कमेटीके लिए चुना जाना कहाँ तक मुनासिब है ?"

बाबू बिना कुछ कहे अपना कम्बल लेकर बिस्तर पर लेट गया और एक पुस्तकके पन्ने पलटने लगा । संतरामने जूतोंके फ़ीते निकाल दिये और एक जूतेको ब्रशसे रगड़ता हुआ बोला, "वैसे जी, सब मेहतर इसे वोट दें, तो यह चुना भी जा सकता है । सरकारने भी हद कर दी । जमादार कल तक कमेटीकी नालियाँ साफ़ करते थे, अब जाकर कमेटीकी कुर्सी पर बैठा करेंगे ।"

वह जूता चमक गया था । उसे रखकर दूसरा जूता उठाते हुए उसने कहा, "आज अगर यह चुन लिया गया तो मेरे लिए तो बड़ी मुश्किल हो जायगी । पहले ही हम दोनोंकी खटपट चलती रहती है, फिर तो एक दिन भी कटना मुमकिन नहीं होगा ।"

कुछ क्षण वह चुपचाप जूतेको रगड़ता रहा । फिर उसमें फ़ीता डालते हुए बोला, "अगर आज यह चुना गया तो मैं सोचता हूँ कि मैं नौकरीसे इस्तीफ़ा ही दे दूँ । यह, साहब, अपनी इज़्ज़तका सवाल है । क्या कहते हैं ?"

और बाबूके फिर कुछ न कहने पर उसने जूते बाबूको दिखलाते हुए पूछा, "क्यों जी, ठीक चमक गये ?"

"हाँ, इधर रख दे," बाबूने कहा, "और जाकर मेरे लिए एक कैप्स्टन की डिबिया ले आ ।"

सिगरेट लानेका आदेश पाकर जब वह बाहर निकला तो उसने देखा कि जमादारकी बीबी बंतो लॉनके पौधोंसे फूल तोड़ रही है । अभी तीन-चार दिन पहले उसकी बीबी शान्तिने बंतोंको फूल तोड़नेसे रोका था ।

संतरामको लगा कि आज बंतो जानबूझकर उन्हें चिढ़ाना चाहती है। उसके मनमें क्रोध-मिश्रित खीझका उदय हुआ, पर उससे कुछ कहते नहीं बना। एक तो आज उसे अपनेमें बंतोसे कुछ कहनेका नैतिक साहस नहीं मिल रहा था, और दूसरे अपने नये रंगीन वस्त्रोंमें बंतो आज और दिनोंकी अपेक्षा अधिक सुन्दर लग रही थी। संतरामको जमादार माधोसे इस बात की भी ईर्ष्या थी, कि उसकी पत्नी इतनी सुंदर थी और तीन बच्चोंकी माँ होते हुए भी अभी लड़की-सी ही दिखायी देती थी। दूसरी ओर उसकी पत्नी शान्ति थी, जो अभी एक ही बच्चेकी माँ थी, पर लगता था कि उसका यौवन दस साल पीछे रह गया है—सुन्दर तो ख़ैर वह कभी थी ही नहीं। जब शान्ति बंतोको कोई आदेश देती तो स्वयं संतरामको उसका आदेश देना अस्वाभाविक लगता था, यद्यपि शान्तिके शिकायत करने पर कि बंतो बात-बातमें उसकी अवहेलना करती है, वह उसके अधिकारका शाब्दिक समर्थन कर दिया करता था। परन्तु कभी शान्ति बंतोकी उपस्थितिमें उसकी शिकायत करती तो वह निष्पक्ष मध्यस्थकी तरह कहता, "अरी, आपसमें झगड़ती क्यों हो? यह सरकारका काम है और हम सबका साझा फ़र्ज़ है। आपसमें मेल-जोलके साथ रहा करो।"

बंतोके पाससे निकल कर संतराम अपने क्वार्टरके आगे पहुँचा तो उसने देखा कि वहाँ शान्ति किसी वजहसे बच्चे पर झुंझला रही है। उसके ढीले-ढाले अंग, फिर और भी ढीले-ढाले वस्त्र, और उस पर यह झुँझलाहटका भाव देखकर संतरामका अपना हृदय झुँझलाहटसे भर गया। उसका मन हुआ कि उसे डाँट दे, पर फिर कुछ सोचकर वह आगे बढ़ गया। सड़क पर आकर भी उसकी झुँझलाहट शान्त नहीं हुई। उसने बाबूके लिए कैप्स्टनकी डिबिया ख़रीदी और एक लैंपकी डिबिया अपने लिए ले ली। एक सिगरेट सुलगाये हुए वह रेस्ट-हाउसकी ओर लौटा। चलते हुए उसके मस्तिष्कमें उन दिनोके धूमिल चित्र उभरने लगे, जब वह दिल्लीमें बाबू गनपतलाल की थिएटर कंपनीमें नौकर था। वहाँ उसका काम बिजलीकी फ़िटिंग

करनेका था, पर दो-एक बार बाबू गनपतलालने उसे अभिनय करनेका अवसर भी दे दिया था। उस कंपनीमें लगातार छह-छह महीने वेतन नहीं मिलता था, पर फिर भी जिस दिन कंपनी बंद हुई थी, उस दिन उसे यही प्रतीत हुआ था कि उसके जीवनका आधार छिन गया है। वेतन तो कहीं भी काम करनेसे मिल सकता था, पर थिएटर कंपनीमें जो कुछ मिलता था वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ था। वहाँ मिन्ना थी, रूपी थी, सकीना थी! वह समय अब बारह साल पीछे रह गया था। यह सोचकर उसे एक विचित्र सिहरनका अनुभव हुआ कि मिन्नाकी बेटी चंदा, जो तब आठ बरस की गुड़िया-सी थी, अब बीस वर्षकी नवयुवती होगी। उसके क़दम कुछ तेज़ हो गये और वह इस विश्वासके साथ चलने लगा कि उसका वास्तविक क्षेत्र थिएटर कंपनी ही है—वह यूँ ही रेस्ट-हाउसकी चौकीदारीके दलदलमें फँस कर अपना जीवन नष्ट कर रहा है।

जब उसने दो नंबर कमरेमें पहुँचकर कैप्स्टनकी डिबिया बाबूको दी, तब भी उसका मन थिऐटर कंपनीके वातावरणमें ही खोया हुआ था। दियासलाई जलाकर बाबूका सिगरेट सुलगवाते हुए उसने उससे पूछा, "क्यों बाबूजी, आजकल उधर कहीं कोई थिएटर कंपनी नहीं चल रही?"

"मुझे पता नहीं," बाबूने सिगरेटका कश खींचकर कहा।

"दरअसल बात यह है साहब, कि मेरी असली लाइन वही है," संतराम आवश्यकता न रहने पर भी झाड़न उठाकर कुर्सी झाड़ता हुआ बोला, "चौकीदारीमें तो मैं ऐसे ही आ फँसा हूँ, वर्ना पहले मैं दिल्लीमें एक थिएटर कंपनीमें ही काम करता था।"

"यहाँ तुम कबसे काम कर रहे हो?" बाबूने पूछा।

"यहाँ जी, मुझे कोई दस-ग्यारह साल हो गये।"

"तब तो तुम यहाँके बहुत पुराने आदमी हो!"

"जी हाँ!" संतरामने ये शब्द स्वभाववश ही कह दिये। वैसे वहाँ का पुराना आदमी कहलाना उस समय उसे रुचिकर नहीं लगा।

"थिएटर कंपनीमें तुम कितने साल रहे हो ?" बाबूने दूसरा प्रश्न पूछा। संतराम इस प्रश्नका निश्चित उत्तर अच्छी तरह जानता था। उस 'अपनी लाइन' में उसने कुल एक साल और सात महीने बिताये थे, जिनमेंसे वेतन केवल आठ महीनेका ही प्राप्त हुआ था। पर उत्तर देनेसे पहले वह जैसे मन-ही-मन गिनती करनेके लिए कुछ रुका और फिर बोला, "बस जी, यहाँ आनेसे पहले मैं वहीं पर था।" और उसके ओंठों पर खिसियानी हँसीकी रेखा प्रकट हो गयी।

कुर्सीको छोड़कर अब अलमारीके शीशे झाड़नसे साफ़ करता हुआ संतराम अपने उन दिनोंके अनुभव सुनाने लगा तो बाबूने उसे बीचमें ही रोक कर कहा कि वह जल्दी जाकर डाकखानेसे दो लिफ़ाफ़े और चार पोस्टकार्ड ला दे, उसे कुछ आवश्यक चिट्ठियाँ लिखनी है।

डाकखानेसे लिफ़ाफ़े और पोस्टकार्ड ख़रीदते हुए उसने शोर सुना कि जमादार माधो इलेक्शन जीत गया है, और कई लोग उसे फूलोंकी मालाएँ पहनाकर रेस्ट-हाउसकी ओर ला रहे हैं। उसने लैंपका नया सिगरेट सुलगाया और बाहर आकर उस दिशामें देखा, जिधरसे बर्फ़में ढके हुए रास्ते पर तीन-चार सौ गज़ दूर कुछ लोग जमादार माधोको घेरे हुए आ रहे थे। उनके रंगीन वस्त्र बर्फ़की सफ़ेदीके वैषम्यमें और भी रंगीन लग रहे थे। वे बाहें उठा-उठाकर उत्साहपूर्वक नारे लगाते आ रहे थे। संतरामने उस ओरसे आते हुए एक नवयुवकसे पूछा, "क्यों भाई, कितने वोटोंसे जीता है हमारा जमादार ?"

"सवा दो सौ वोटोंसे !" और उस नवयुवकने साथ यह भी बताया कि रातको बड़े साहबने जमादारको खानेपर बुलाया है।

"अच्छा !" और संतरामकी आँखें विस्मय और ईर्ष्यासे फैलकर रह गयीं। उसने पुनः उस दिशामें देखा, जिधरसे लोग माधोके साथ आ रहे थे। वह क्षण-भर इस अनिश्चयमें खड़ा रहा कि उसे वहाँ रुकना चाहिए या रेस्ट-हाउसकी ओर चल देना चाहिए। फिर हाथके कार्डों और लिफ़ाफ़ों

की ओर ध्यान जाने पर वह जैसे बहाना पाकर रेस्ट-हाउसकी ओर चल दिया ।

बंतो क्वार्टरके बाहर खड़ी अपने पतिको दूरसे आते देख रही थी । उसके चेहरेकी चमक उस समय और भी बढ़ रही थी । कुछ और भी मेहतरानियाँ उसके पास खड़ी थी । संतरामने उसके पाससे निकलते हुए उसे लक्षित करके कहा, "जमादारिन, माधो इलेक्शन जीत गया है । दो सौ वोटोंसे जीता है ।"

उसने स्वरमें यथासम्भव सौहार्द लानेकी चेष्टा की थी, पर बंतोंने उसकी बातकी ओर ध्यान नहीं दिया । वह उपेक्षापूर्ण ढंगसे बोली, "हाँ, राजू अभी हमें बता गया है ।"

संतराम मन-ही-मन कुछ उलझकर दो नंबर कमरेकी ओर चल दिया । जब उसने कार्ड और लिफ़ाफ़े बाबूको दिये, तो उसे आदेश मिला कि यह वहीं ठहरे, अभी पत्र पोस्ट करनेके लिए ले जाने होंगे । कुछ देर बाद जब वह पत्र लेकर निकला तब तक माधोके साथी, उसे लिये हुए रेस्ट-हाउसके सामने पहुँच गये थे और ज़ोर-ज़ोरसे नारे लगा रहे थे—"हरिजन यूनियन ज़िंदाबाद!" "माधोराम जमादार ज़िंदाबाद !"

संतराम डाकखानेकी ओर न जाकर पीछेके रास्तेसे डेरीफ़ार्मके लेटर-बक्सकी ओर चल दिया, हालाँकि वह जानता था कि डेरीफ़ार्मके लेटर-बक्स से दिनकी अन्तिम डाक चार बजे ही निकल जाती है और उस समय साढ़े चार बज रहे थे ।

दूसरे दिन सबेरे संतरामकी पत्नी शान्तिकी सूरत कुछ और-सी हो रही थी—उसकी आँखें सूज रही थीं और चेहरे पर झाइयाँ-सी पड़ी हुई थीं । संतराम चाय लेकर दो नंबरके कमरेमें आया, तो चाय उँडेलते हुए उसने बाबूसे पूछा, "क्यों साहब, जमादार कमरा साफ़ कर गया है ?"

"उसकी बीबी साफ़ कर गयी है ।" बाबूने उत्तर दिया ।

"मेरे बारेमें उसने कोई बात तो नहीं की ?" उसने कुछ आशंकित और खिसियाने स्वरमें पूछा ।

"नहीं !" बाबूने एक शब्दमें उत्तर देकर चायकी प्याली उठा ली ।

अब संतराम व्याख्या करता हुआ कहने लगा, "साहब आपको पता है न, कि जमादार कल इलेक्शन जीत गया है ? बड़े साहबने कल रातको इसे और इसकी बीबीको खाने पर बुलाया था । पता नही, इन लोगोंने वहाँ जाकर साहबके सामने मेरी क्या-क्या शिकायत की है ? मैंने सोचा कि शायद आपसे जमादारिनने इस बारेमें कुछ कहा हो ।"

"मुझसे किसीने कोई बात नही की !" बाबूने झिड़कनेके स्वरमें कहा ।

संतराम कुछ क्षण चुप खड़ा रहा । फिर बोला, "साहब, मेरा स्वभाव ऐसा है कि मैं किसीसे लड़ना-झगड़ना पसंद नही करता । पर मेरी घर वालीका अपनी ज़बान पर क़ाबू नहीं है । वही रोज़-रोज़ जमादारिनसे लड़ पड़ती थी, जिससे जमादारकी भी मेरे साथ नही पटती थी । मैंने इसे कई बार समझाया पर यह समझी ही नही । रातको फिर मुझसे नहीं रहा गया । मैंने दो-चार हाथ ऐसे लगा दिये हैं कि अब आगेके लिए सुधरी रहेगी ।"

बाबूने चायकी प्याली ट्रेमें रखते हुए कहा कि वह ट्रे उठाकर ले जाय । संतराम ट्रे उठाता हुआ बोला, "अब तो बड़ा साहब भी जमादारकी ही सुनेगा, क्यों जी ? उसने साहबके पास मेरी शिकायत कर दी तो बताइए मैं कहाँका रह जाऊँगा ? औरत जात इन चीज़ोंको नहीं समझती । मुसीबत तो अब मेरी हो रही है, जिसकी नौकरीका सवाल है ।"

ट्रे उठाये हुए वह बाहर निकल आया । बरामदेके सिरे पर उसे जमादार माधो झाड़ू देता हुआ मिला । उसके निकट पहुँच कर संतराम खीसें निपोर कर बोला, "क्यों भई, जीत लिया इलेक्शन माधोराम ? कल सुनकर बहुत

ही ख़ुशी हुई। हम ग़रीब लोगोंकी भी अब कमेटीमें सुनवाई हो जायगी। अब लगता है कि हाँ, सचमुचमें ही आज़ादी आयी है।"

और क्षण भर रुककर जब और कुछ कहनेको नहीं मिला तो वह ट्रे सँभाले हुए अपने क्वार्टरकी ओर बढ़ गया, जहाँ उस समय शान्ति एक हाथसे बच्चेको पकड़े हुए गालियाँ देती हुई दूसरे हाथसे उसे पीट रही थी !

●

मरुस्थल

मरुस्थल अर्थात् रेत और गुबारका देश। मगर उससे रूखा एक और भी मरुस्थल है।

मेरे कमरेका वातावरण बहुत रूखा और बोझिल है। घड़ीमें केवल घंटेकी सूई है और जीवन उसीके हिसाबसे चलता है। हर चीज़ जैसे ऍग-ड़ाइयाँ ले रही है। किताबें शेल्फ़में सो जाना चाहती हैं, दरी फ़र्श पर बेसुध-सी ऊँघ रही है। बाहर जहाँ तक आँख जाती है, रेत ही रेत फैली है। रेतके बवंडर बार-बार खिड़कीके किवाड़ोंसे आ टकराते हैं। हवा हू-हूकी आवाज करती हुई बार-बार किवाड़ोंको हिला जाती है।

उधर साथके कमरेमें इन्दु बेताब करवटें ले रही है।

रतनाडा रोडका यह बँगला जोधपुर शहरसे दो मीलके फ़ासले पर है। बँगलेमें हम दस व्यक्ति रहते हैं और सबका परिचय अपने इस दायरे तक ही सीमित है। काम अलग-अलग होते हुए भी हम सबका पेशा एक है—सब राजस्थान फ़िल्म कार्पोरेशनमें नौकर हैं। नसीम और सकीना कभी वेश्याएँ थीं, अब अभिनेत्रियाँ कहलाती हैं। धनपत राय कभी थियेटरमें पर्दे खींचता था, आज फ़िल्म कार्पोरेशनका मैनेजिंग डायरेक्टर है। शंकर, शर्मा और लतीफ़ तीनों एक्टर हैं। इन्दु नसीमकी बेटी है। धनपतराय उसका बाप है। सकीना उसकी छोटी माँ अर्थात् माँकी बहन है।

इंदु छटपटा रही है, नसीम अपने कमरेमें घुट कर रो रही है, सकीना उसे दिलासा दे रही है और धनपतराय अपने कमरेमें शराब पी रहा है।

चाँदीके बहुतसे सिक्के एक साथ खनखनाये जा रहे हों। दोनों बहनें दिन भर बरामदेमें आवारा घूमती रहती थीं। अब कई दिनोंसे अपने कमरेके बाहर उनकी सूरत भी नज़र नहीं आती।

इन्दु बिल्कुल मेरे साथके कमरेमें है, इसलिए उसकी हर कराहट मुझे सुनायी दे जाती है। शुरू-शुरूमें वह सारा दिन मेरे कमरेमें आ कर चहकती रहती थी। इस बँगलेमें आने पर, पहले दिनसे वह मुझसे बहुत हिल-मिल गयी थी। हर रोज़ चार-छः बार आ कर वह मेरा दरवाज़ा खट-खटाती, "इन्दु बाई अंदर आ सकती है?"

और अपने आप 'हाँ, आ सकती है' कहकर वह अंदर आ जाती। फिर वह बैठ कर देर-देर तक बताती रहती थी कि दिल्ली और कलकत्तेमें उसकी कौन-कौन सहेलियाँ हैं, उसे दिल्ली शहर और शहरोंकी अपेक्षा क्यों ज़्यादा अच्छा लगता है और जब वह बड़ी होगी तो अपनी कोठी किस ढंगकी बनवा.गी। वह कभी मुझे अपने साथ खेलनेके लिए मजबूर करती। कभी मुझे नाच कर दिखाती और कभी मेरे गलेमें बाँहें डाल कर सौ-सौ तरहके सवाल पूछती। बँगलेके लोगोंमें उसे ही मुझमें सबसे ज़्यादा दिलचस्पी थी और मेरा ज़्यादातर समय उसीके साथ बीतता था।

उस दिन बाहर बहुत ज़ोरके बवंडर उठ रहे थे, जब इन्दुने रोज़की तरह दरवाज़ा खटखटायाः "इंदु बाई अंदर आ सकती है?" और दरवाज़ा खोल कर वह अंदर आ गयी। उसके पीछे-पीछे एक अपरिचित युवक भी कमरेमें आ गया। इन्दुने उसका परिचय दिया, "ये गोपाल बाबू हैं, आपसे मिलने आये हैं।"

गोपालने पहले सारे कमरेमें नज़र दौड़ा कर देखा, फिर अनुगृहीत करनेके ढंगसे मेरी ओर हाथ बढ़ा दिया। मेरे कहने पर वह पल भरके लिए कुर्सी पर बैठ गया और बड़े आदमियोंकी तरह दो बातें करके, समय कम होनेकी शिकायत करता हुआ चला गया। उसके चले जाने पर इन्दु मेरी गोद-

में आ बैठी और बोली, "इस आदमीसे हमको डर लगता है। यह हमको बहुत घूर-घूर कर देखता है।"

"मैं भी तो तुझे घूर-घूर कर देखता हूँ, तुझे मुझसे डर नही लगता ?" मैंने मुसकरा कर पूछा।

"तुम इसकी तरह थोड़े ही देखते हो ?" वह बोली, "यह तो ऐसे देखता है जैसे मैं कोई तसवीर हूँ। यह बाबूजीका दोस्त है और अम्मीके साथ आज कल बहुत घुल घुल कर बातें किया करता है। आज यह अम्मीसे एक बहुत बुरी बात कहता था।"

पहले उसने वह बात नही बतायी। मेरे बहुत पूछने पर बहुत धीरेसे बोली, "अम्मीसे कहता था कि तू क्यों धनपतरायके साथ ज़िन्दगी ख़राब करती है ? मैं होटल खोलता हूँ, तू मेरे साथ चलकर काम कर, हम लाखों रुपया कमायँगे। फिर हमारी तरफ़ देखकर बोला-अच्छा, तू इन्दुको मेरे हवाले कर दे, इसका जो तू चाहे ले ले। मैं तो ऐसी बात पर इसके थप्पड़ मारती, मगर अम्मी चुपचाप सुनकर हँसती रहीं।"

मैंने उसके सिरको थपथपाया और कहा, "पगली, वह मज़ाक करता होगा।"

"नहीं जी, मज़ाककी बात और होती है, हमको सब पता है", और फिर आवाज़ और भी धीमी करके बोली, "अम्मी वैसे तो हमको पीटती है, पर उसके सामने ऐसे तारीफ़ करती थीं जैसे सचमुच हमको बेचना ही हो।"

नौ बरसकी इन्दु सचमुच बहुत कुछ जानती थी। गोपाल वाक़ई नसीम पर डोरे डाल रहा था और नसीम उनमें उलझ रही थी। गोपालके बायलके कुर्तेकी जेबमें सौ-सौके नोट चमकते रहते थे जिनके बल पर उसे लखपति होनेका दावा था। नसीमके सौदेमें उसकी आँख ज़्यादा इन्दु पर ही थीं। एक दिन वह ख़ूब पिये हुए मेरे कमरेमें आ गया। नशेकी बहकमें उसने सारी बात मेरे सामने उगल दी। वह बंबईमें होटल खोलनेकी सोच रहा था, जिससे उसे लाखोंकी आमदनीकी आशा थी। उसने उल्लाससे झूमते

हुए कहा, "देखना, चार दिनमें वह धनपतके मुँह पर थूक कर मेरे साथ चली जायगी। उसने मेरे साथ पक्का वायदा कर लिया है।"

फिर वह काफ़ी देर मिलें और कारख़ाने चलानेके प्रोग्राम बनाता रहा, और अन्तमें ठंडे पानीका गिलास पी कर चला गया।

धनपतराय गोपालकी चाल न समझता हो, ऐसा नहीं था। वह बहुत खुर्राट आदमी है और अपने आपको बहुत कुछ समझता भी है। वैसे उसके हाथ पैर भी काफ़ी मज़बूत हैं। पचपन बरसका हो कर भी वह बात-बातमें जवानीकी क़सम खाकर पुरुषत्वकी डींग मारता है। गोपालसे उसने कुछ नही कहा, लेकिन एक दिन नसीमकी लगामें खींच दी। नसीम दो चार दिन गोपालसे दूर-दूर रही। मगर वास्तवमें इसमें भी गोपालकी योजना ही काम कर रही थी।

एक दिन इन्दु ताशका एक पैकिट मुझे दिखानेके लिए लायी। मेरे कन्धेके साथ सटकर वह धीरेसे बोली, "बाबूजी, आज बाहर गये हुए हैं न, अम्मीने गोपालको आज फिर बुलाया है। अब वो कमरेमें बैठे धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं।"

"तू यह ताश कहाँसे लायी है?" मैंने बात बदलनेके लिए पूछा।

"वही गोपाल लेकर आया है। हमने पहले नहीं लिये तो अम्मी हमको डाँटने लगीं। फिर हमने ले लिये तो हमसे कहा कि बाहर जाकर खेलो। गोपाल कहता था, कि कल तेरे लिए छोटा पियानो लेकर आऊँगा।"

"अच्छा?" मैंने कहा, "यह ताश तो वह बहुत बढ़िया लाया है..."

"बढ़िया हो चाहे कैसा हो, हम यह ताश नहीं खेलेंगे," इन्दु हठ और तिरस्कारके साथ बोली, "वह पिआनो लायगा तो हम उसका पिआनो भी नही बजाएँगे।"

"क्यों उससे लड़ाई हो गई है?"

"अम्मी आज फिर उसके साथ बम्बई जानेकी सलाह बना रही हैं।"

"सच?"

"सच नहीं तो क्या ? अम्मी कहती थीं कि बाबू जी हमें पैसा नहीं देते । वह बोला कि चल कर दो चार साल तू आप कमा ले, फिर तेरी इन्दु लाखोंकी हो जायगी ।"

मैं उसे बाहोंमें लिये हुए चुपचाप उसके बालोंके साथ खेलता रहा । कुछ रुककर वह फिर बोली, "मैं बड़ी हो कर डाक्टरी पढ़ूँगी । मेरी सहेली की बड़ी बहन डाक्टरी पढ़ती है ।"

मैंने उस समय लक्षित किया कि उसका चेहरा पहलेसे कुछ पीला पड़ गया है और उसके गोरे गालों पर बारीक नीली धारियाँ उभर आयी हैं । वह उस दिन काफ़ी देर तक मेरे पास बैठ कर मुझसे बातें करती रही । मैं उसे बहलानेके लिए उसे अपना एलबम दिखलाने लगा । एलबममें मेरे एक मित्रके ब्याहके समयकी तसवीरको वह देर तक देखती रही । फिर उसने पूछा, "ये कौन हैं ?"

"यह मेरा दोस्त है और यह उसीकी बीवी है," मैंने कहा ।

"आप भी अपने ब्याहके दिन ऐसी फ़ोटो खिचवायँगे ?" उसने फिर पूछा ।

मै पल भर उसके मासूम चेहरेको देखता रहा । फिर मैंने कहा, "मेरा ब्याह पता नहीं होगा कि नही, पर जिस दिन तेरा ब्याह होगा उस दिन तेरी ज़रूर ऐसी तसवीर खिंचेगी ।"

"हिश् !" वह बोली, "हम तो डाक्टरी पढ़ेंगे, हम ब्याह थोड़े ही करवायँगे ?"

कुछ देर वह चुप-चाप एलबमके पन्ने उलटती रही । फिर उसने पूछा, "अच्छा आप बताइए मैं हिन्दू हूँ कि मुसलमान ?"

"तेरा नाम क्या है ?" मैं उसे बहलाने लगा ।

"इन्दु ।"

"तो तू हिन्दू है ?"

"नामसे क्या होता है ?" वह बोली, "बाबूजी हिन्दू हैं और अम्मी मुसलमान हैं। मैं न हिन्दू हूँ न मुसलमान।"

"नहीं है तो न सही। हिन्दू-मुसलमान होनेसे क्या होता है ?"

"अब तो नहीं होता, पर जब मैं बड़ी हो जाऊँगी, तब तो होगा।"

"क्या होगा ?"

"यह आप अपने आप समझ लें। हम नहीं बतायँगे।"

मैंने उसे अपने साथ सटा लिया और कहा, "क्या होगा ? कुछ नहीं होगा। तू तो बिल्कुल पागल लड़की है।"

और मैं देर तक उसके बालोंमें हाथ फेरता रहा।

मगर उसी रात नंगी वास्तविकता पर्देसे बाहर आ गयी।

रातके साढ़े ग्यारह या बारह बजे थे। मुझे अभी नींद नहीं आयी थी। मैं बरामदेमें अपनी चारपाई पर करवटें ले रहा था। पासके कमरेमें घड़ीकी टिक-टिक लगातार सुनायी दे रही थी। अचानक नीरवताकी छातीमें एक नश्तर-सा चुभा। नसीमकी एक लंबी चीख़ वातावरणमें फैल गयी। साथ धनपतरायकी कर्कश आवाज़ सुनायी देने लगी, "इन्दु को लेकर बम्बई जानेकी तैयारियाँ कर रही है ? तेरी खाल न उधेड़ दूँ हरामज़ादी ! नौ बरससे उसे पाल रहा हूँ, हज़ारों रुपये उसपर ख़र्च किये है, अब कमाईके दिन आये तो उसे तेरे साथ भेज दूँ ? तुझे जाना है, जा, अभी निकल जा। उसे हाथ भी लगाया तो तेरा ख़ून पी लूँगा।"

फिर एक घूँसा, एक थप्पड़ और नसीमके रोनेकी आवाज़ और धनपतरायकी ज़ोर-ज़ोरकी गालियाँ...

बरामदेमें सोये हुए प्रायः सभी लोग जाग गये थे पर सब दम साधे चारपाइयों पर ही पड़े रहे। धनपतराय बड़बड़ाता रहा, "कहती है अपनी बेटीको लेकर जा रही हूँ। बेटी तू बापके घरसे लेकर आयी थी ? आज से उसे हाथ लगायगी तो तेरे हाथ न चीर दूँ तो कहना। बड़ी बेटी वाली आयी है।"

सारी रात नसीम सुबक-सुबककर रोती रही। इन्दु सहमी हुई रात भर अपनी चारपाईपर सीधी लेटी रही। शंकर शर्मा और लतीफ़ ऐसे सिर मुँह ओढ़कर पड़े रहे जैसे वे इस घटनासे बिल्कुल बेख़बर हों। मैं सुबह तक न जाने कितनी बार सोया और कितनी बार जागा।

मगर सुबह सब लोग दबे-दबे उसी विषयको लेकर बात करते रहे। हर एकको धनपतरायसे किसी न किसी तरहकी शिकायत थी इसलिए नसीमके साथ सबको सहानुभूति थी। शंकरने मुझे बतलाया कि थिएटर में धनपतराय इसीतरह थप्पड़ मार-मारकर अपने कलाकारोंको संवाद याद कराया करता था। मगर नसीम पर उसका हाथ कल पहली बार हो उठा था।

इस घटनाके बाद गोपालको सख़्त निराशावादने घेर लिया। वह दूसरे दिन थोड़ी देरके लिए आया और मेरे पास बैठकर अध्यात्मवादसे लेकर साम्यवाद तककी चर्चा करता रहा। उस निराशाकी बहकमें वह नसीम और सकीनाके विषयमे न जाने क्या-क्या कह गया। अन्तमें बेमतलब बकते रहनेके लिए क्षमा माँगकर वह जाता हुआ उस घरमें कभी न आनेकी क़सम खा गया।

उस रातकी घटनाके बादसे ही नसीमका लापरवाहीसे घूमना बंद हो गया। तबसे वह बहुत तत्परताके साथ धनपतरायके हर आदेशका पालन करने लगी। आप उसका खाना लगाती, और जब उसकी बुलाहट होती तो शराबकी बोतल लेकर चुपचाप उसके कमरेमें चली जाती। उसका चेहरा भी पहलेसे बदलने लगा। चेहरेकी सुर्ख़ी धोनेपर ऐसे लगता जैसे उसे यरकान हो रहा हो। लिपस्टिकके नीचे उसके ओठोंकी पपड़ियाँ छिप नही पातीं। वह दिनभर कमरेमें बन्द रहती और शामको कभी-कभी बँगलेसे दूर टहलने चली जाती।

उस घटनाके कुछ ही दिन बाद एक दिन धनपतरायने दो बड़े-बड़े सेठों को चायपर बुलाया। चायकी टेबुल पर नसीम और सकीना मेज़बान थीं।

दोनों सेठ सफ़ेद खद्दरमें सजे हुए पान चबाते हुए बैठे थे। इन्दु भड़कीली फ्राक पहने धनपतरायकी गोदमें बैठी हुई गुड़ियाकी तरह उन लोगोंकी तरफ़ देख रही थी। सुना गया था कि वे सेठ कम्पनीमें दो लाख रुपया लगायेंगे।

बात चलते-चलते इन्दुपर आ गयी और धनपतराय सेठोंको उसकी मार्केट वेल्यू समझाने लगा। वह इन्दुका इसतरह बखान करने लगा जैसे एक जीवित बच्चीकी नहीं, एक पुतलीकी बात कर रहा हो और कह रहा हो कि मै इस पुतलीको जैसे चाहूँ नचा सकता हूँ; इसे नचानेके लिए किसी तार की ज़रूरत नही, मेरे हाथमें तिजुर्वा है, चौबीस सालका तिजुर्वा। सेठ लोग इन्दुको देखते हुए सिर हिलाते रहे। धनपतरायने उन्हें विदा करते समय शीघ्र ही एकदिन वेरायटी शो रखने और उन्हें इन्दुकी कला दिखानेका वायदा किया।

सेठोंकी सुविधाको देखते हुए इसके लिए इतवारका दिन निश्चित हुआ। बंगलेके वातावरणमें उस एक दिनके लिए काफ़ी हलचल भर गयी।

इन्दु पैरमें घुँघरू बाँधे हुए बरामदेमे घूम रही थी। मैं उसकी बाँह पकड़कर उसे बरामदेसे अपने कमरेमें ले आया। वह ख़ुशबूसे महक रही थी। आसमानी रंग के रेशमी फ़ाकके साथ उसके बालोमें बँधा हुआ सुनहरा रिबन बहुत खिल रहा था। मगर उसकी बड़ी-बड़ी आँखें जैसे बरसनेको हो रही थीं। मैंने उसे हाथोंमें उठा लिया और कहा, "इन्दु, आज तो तू बिल्कुल परी लग रही है।"

दो आँसू ढलककर इन्दुके गालोंपर आ गये। मैं उसे सोफ़ेपर बिठाकर उसके पास बैठ गया। वह सोफ़ेकी बाँहपर सिर रखकर सुबकने लगी। मैंने उसे थपथपा कर कहा, "क्या बात है पगली, रोती क्यों है?"

इन्दुने सोफ़ेकी बाँहसे सिर हटाकर मेरी छातीमें मुँह छिपा लिया और उसी तरह सुबकती हुई बोली, "आप आज मुझे दिल्ली ले चलिये। मेरी वहाँ एक सहेली है, मुझे उसके घर छोड़ आइए।"

"कौन सहेली है तेरी वहाँ?"

"कमलाका घर वहाँ है। मै कमलाके घर रहूँगी। मैं यहाँ नहीं नाचूँगी।"

"क्यों नाचनेमें क्या है ?" मैंने चुमकारकर उसके गालोंको थपथपाया और कहा, "तुझे इतना अच्छा तो नाचना आता है। आज इतने बड़े-बड़े लोग तेरा नाच देखने आयेंगे। आज तो तुझे कितने ही इनाम मिलेंगे।"

इन्दुने सिर उठाकर मेरी ओर देखा और बोली, "हमने लोगोंसे इनाम लेनेके लिए थोड़े ही नाचना सीखा है ? कमलाको भी नाचना आता है। पर वह तो अपने घरमें ही नाचती है। मै कोई तमाशा हूँ ?"
उसके ओंठ काँपने लगे और आँखें जल्दी-जल्दी झपकती रहीं।

"तू आज अकेली थोड़े ही नाचेगी ?" मैंने रूमालसे उसकी आँखें पोंछते हुए कहा, "तेरी अम्मी भी तो नाचेगी।"

"अम्मी तो थिएटरमें भी नाचती थीं," वह बोली, "पता है, लोग उन को क्या-क्या कहते हैं ? मै नाचूँगी तो वही बाते मुझको भी कहेंगे।"

"नहीं, नही, तुझको कैसे कहेगे ? इन्दु रानीको भला कोई कुछ कह सकता है ?"

"क्यों नही कह सकता ?" वह उसी तरह काँपते हुए ओंठोंसे बोली, "शंकर अभी-अभी शर्मासे कह रहा था कि यह लड़की बड़ी होकर अपनी माँको भी मात क रेगी।"

"शंकर यह कह रहा था ?"

"हाँ, शंकर शर्मासे कह रहा था और शर्मा उससे बोला कि हाँ, रंडी की औलाद है, रंडियोके तो खूनमें नखरा होता है।"

और कुछ क्षण चुपचाप आँखें झपकाकर उसने पूछा, "आप बताइए, मैं रंडी हूँ ?"

मैंने उसकी ठुड्ढी हाथसे उठाकर उसका माथा चूम लिया और कहा, "जो ऐसी बात कहता है, उसकी अपनी जबान गंदी होती है। तू ऐसी बात सुनती ही क्यों है ?" और मैंने फिर रूमालसे उसकी आँखें पोंछ दी।

उस रात काफ़ी देरतक चहल-पहल रही। खाना हो चुकनेपर पहले धनपतरायने एक गीत गाया। फिर नसीम और सकीनाके गीत और नसीम का एक नाच हुआ। उसके बाद इन्दुने बादलमें चमकती हुई बिजलीका नृत्य किया। वह थिरकती हुई जब बाहें फैलाती तो नेपथ्यमें बादलका गर्जन सुनायी देता। फिर वह सहमी सी सिमटने लगती। जब उसने वह नृत्य समाप्त किया तो बहुत देरतक तालियोंका शोर सुनायी देता रहा।

मैंने मेक-अपके कमरेमें जाकर उसे शाबाश दी और पूछा, "बता, तुझे इसके लिए क्या इनाम दूँ ?"

"कुछ नहीं, तुम यहाँ हमारे पास बैठो, बस !" वह बोली, "हमसे कहीं कुछ खराब तो नहीं हुआ ?"

"नहीं। क्यों ?" मैंने देखा कि उसकी आँखोंका भाव कुछ और सा हो रहा है।

"हमसे रिहर्सलमें थोड़ा बिगड़ गया था तो बाबूजी ने थप्पड़ मारा था।" उसने पुतलियोंको फैलाकर और पलकें जल्दी-जल्दी झपकाकर उमड़ते हुए आँसुओंको वापस लौटा देनेकी चेष्टा की और उस चेष्टाको कामयाब बनानेके लिए हँसने लगी।

दूसरी बार वह फूलोंकी रानी बनकर आयी। उसे सिरसे पैर तक फूलोंसे लादा गया था। वह एक हाथमें एक फूलोंसे भरी हुई डाली लिये थी और दूसरे हाथमें फूलोंके गजरे। उसे उस रूपमें देखकर सेठ लोगोंके सिर ज़रा-ज़रा हिले। धनपतरायके चेहरे पर चमक आ गयी। इन्दुने नाचना आरम्भ किया।

धीरे-धीरे तबलेके साथ उसके पैरोंकी तेज़ी बढ़ने लगी। उसके पैर तालके अनुसार ठीक पड़ तो रहे थे, मगर शायद उससे फूलोंका बोझ सँभाला नहीं जा रहा था, या शायद उसका ध्यान कहीं और हट गया था... मैंने लक्षित किया कि वह दो एक जगह बीचमें थोड़ा उखड़ गयी है। अगले ही क्षण यह निश्चय करना कठिन हो गया कि वह डगमगा रही है या नाच

रही है... बस उसकी बाहें हिल रही थीं और क़दम चल रहे थे! आख़िर उसके पैर उखड़ गये और फूलोंकी डाली और गजरे उसके हाथसे गिर गये। इन्दु गिरनेको हुई लेकिन सँभल गयी, मगर सँभलती-सँभलती फिसलकर गिर गयी।

साज़ रुक गये। पलभरके लिए ख़ामोशी छायी रही।

ऐसे अवसर पर धनपतरायका तिजुर्बा काम आ गया। वह उसी क्षण मंचपर पहुंच गया और गिरी हुई इन्दुको बाहोंमें उठाकर मुसकराता हुआ उपस्थित लोगोंको सलाम देने लगा। साज़ बजने लगे और लोग ज़ोर-ज़ोर से तालियाँ पीटने लगे जैसे इन्दुका गिरना भी तमाशा ही था। जैसे तालियोंके शोरसे गुदगुदायी जाकर भी वह धनपतरायकी बाहों पर पड़ी हुई अपना अभिनय ही पूरा कर रही थी। धनपतराय बाहें हिला हिलाकर सलाम देता रहा और लोग तालियाँ पीट-पीटकर उसका अभिनन्दन करते रहे ...।

आज उस बातको आठ दिन हो गये है। इन्दुकी बेहोशी तो दूसरे दिन दूर हो गयी थी, मगर उसका बुख़ार अभीतक नहीं उतरा। सात दिनमे उसके शरीरकी हड्डियाँ निकल आयीं है। बुख़ारके दबावमें जब वह आँखें उघाड़कर देखती है तो उसकी आँखें देखी नही जातीं। उसके सामने से हट जानेपर भी वे आँखें बार-बार सामने आकर यह सवाल पूछती हैं, "मै रंडी हूँ? आप बताइए, मै रंडी हूँ?"

धनपतरायके कमरेमें उसका दौर अभी तक चल रहा है... सक़ीना नसीमके पाससे उठकर धनपतरायके कमरेमें चली गयी है।

उधर बड़े कमरेमें शंकर और लतीफ़ ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहे हैं। उन्होंने शायद ताशकी बाजी जीत ली है।

भूखे

पहली बार उस महिलाको मैंने शिमलेकी मालरोड पर देखा था।

तब वह शिमलेमें नयी ही आयी थी। शिमलेमें नये आनेवाले लोग, यदि उनमें कुछ भी विशेषता हो, तो बहुत जल्दी पहचाने जाते हैं, और मेरे दोस्त सतीश जैसे लोग चार छः दिनोंमें ही उनकी आर्थिक, पारिवारिक और सामाजिक स्थितिका पूरा ब्यौरा भी ढूँढ निकालते हैं। सतीश यह सब पता किस प्रकार पा लेता था यह मै नहीं कह सकता, अलबत्ता इतना जरूर है कि उसकी बात कभी गलत नहीं निकलती थी। इसीलिए हम उसे चलता फिरता एन्साइक्लोपीडिया कहा करते थे। जिस समय हमने उस महिलाको पहली बार देखा उसी समय मैंने सोच लिया था कि सतीश जरूर उसकी खोज ख़बर निकालेगा। वह सुन्दर तो थी ही पर उससे भी बड़ी बात यह थी कि भारतीय न होनेपर भी उसके शरीरपर सलवार क़मीज़ बहुत खिल रही थी। वैसे तो मालरोड पर कोई न कोई अंग्रेज़ या एंग्लो-इण्डियन लड़की गाहे बगाहे सलवार कमीज़ पहने नज़र आ ज ती थी, पर अक्सर उसके शरीर पर वे वस्त्र पराये-से लगते थे। शायद उनके कन्धोंकी बनावट ज़रा भिन्न होती है या शायद उनका बाहें हिलानेका अन्दाज ज़रा और सा होता है। पर वह उन वस्त्रोंमें उसी स्वाभाविक ढंगसे चल रही थी जैसे पंजाबी लड़कियाँ चलती हैं। उसकी उम्र तीस-बत्तीस वर्षके लगभग होगी पर उसका शरीर जरा भी नहीं ढला था और पहली नज़रमें तो वह बीस-बाईस वर्षकी ही प्रतीत होती थी। उसकी आँखें नीली थीं और बाल घुँघराले और सुनहरे थे। उसका पाँच-छः वर्षका बच्चा उसके साथ था जो खूब गोरा चिट्टा था और लाल और सफ़ेद ऊनके वस्त्रोंमें और भी सुन्दर लगता था। वह माँसे अंग्रेज़ीमें पूछ रहा था, "ममी, शिमला कौनसी जगहका नाम है ?"

और वह उसे समझा रही थी कि वह सारा शहर ही शिमला है, उनके घरसे बहुत आगे तक।

"यह सड़क भी शिमला है?"

"हाँ, यह भी शिमला है।"

"और यह बर्फ़वाला पहाड़ भी?"

"नहीं, वह शिमला नहीं है।"

"वह शिमला क्यों नहीं है?"

और वह उसे समझाने लगी कि वह पहाड़ वहाँसे बहुत दूर है और शिमलाका विस्तार उतनी दूरतक नहीं है।

"खूब चीज़ है!" उसके पाससे निकल जानेपर सतीशने कहा।

और मुझे उसी समय निश्चय हो गया कि सतीश उसका इतिहास जाननेमें ज़रूर दिलचस्पी लेगा।

और सचमुच कुछ दिन बाद रिज से ऊपर 'दो पैसा बेंच' पर बैठे हुए उसने मुझे उसका पूरा इतिहास सुना दिया।

लगभग सात वर्ष पहले सत्यपाल नामक एक पंजाबी युवक, जे० जे० स्कूल आव् आर्ट मे चित्रकलामें डिप्लोमा लेकर, आगे और विशेष अध्ययन करनेके उद्देश्य से, अपने मित्रोंसे डेढ़ हज़ार रुपया उधार लेकर फ्रांस चला गया था। वहाँ रहकर छः महीने उसने किसी तरह निकाल लिये, परन्तु उसके बाद गुज़ारा करना कठिन हो गया तो वह काम करके कुछ पैसे बनाने के इरादेसे इंगलैण्ड चला आया। वहाँ वह एक जूता बनानेके कारखानेमें कुछ दिन चमड़ा साफ करनेका काम करता रहा। वहाँ काम करते हुए ही उसका एवलीन बार्करसे परिचय हुआ जो कारखानेके एक क्लर्क फ्रेड बार्कर की चचेरी बहन थी और कभी-कभी उससे मिलने आया करती थी। फ्रेड बार्करको भी चित्रकलाका थोड़ा शौक़ था और वह उसे अपने पेंसिलके खाके दिखानेके लिए आया करती थी। सत्यपालके बनाये हुए कुछ खाके और चित्र देखनेके बाद वह अपने खाके उसके पास भी ले जाने लगी और

धीरे-धीरे उनका परिचय प्रेममें बदल गया और उन्होंने विवाह कर लिया। एवलीनके पास अपनी चारसौ पाउण्ड की पूँजी थी। उन्होंने निश्चय किया कि उस पूँजीकी सहायतासे सालभर फ्रांसमें रहकर सत्यपाल अपना अध्ययन पूरा कर ले, फिर वे भारतमें जा रहेंगे। साल भर बाद जब वे भारत पहुँचे तो एवलीन एक बच्चेकी माँ बन चुकी थी। भारत आकर उन लोगोंको एक नयी आर्थिक समस्याका सामना करना पड़ा। सत्यपालका ख्याल था कि वह बम्बईमें अपना छोटा-सा स्टुडियो बना लेगा, पर बम्बईमें वग़ैर अच्छी पगड़ी दिये जगह मिलना असम्भव था। वह अकेला होता तो चार छः महीने इधर-उधर धक्के खा लेता, पर एवलीन और बच्चेके साथ होनेसे उसके लिए तुरन्त आयका कोई न कोई ज़रिया पा लेना आवश्यक था। बम्बईमें रहकर वह ज्यादे से ज्यादा किसी कमर्शियल स्टुडियोमें नौकरी कर सकता था जो उसे पसन्द नहीं था। पर क्योंकि और कोई चारा नही था, इसलिए उसने वही काम आरम्भ कर दिया और तीन साढ़े तीन साल उस चक्करमें फँसा रहा। इस बीच उसने कई दूसरे चित्र भी बनाये जिन्हे चित्रकारोंके सर्कलमे काफ़ी पसन्द किया गया, पर ऊँची क़ीमतके समझे जाने पर भी उसके चित्र उसके लिए आयका जरिया नही बन सके। अन्तमें वह बम्बईसे दिल्ली चला आया और छः आठ महीने वहाँ भटकता रहा। लगातार चिन्ता और संघर्षके कारण उसका स्वास्थ्य काफ़ी गिर गया था और तभी एक डाक्टरसे उसे पता चला कि उसे टी० बी० हो गया है।

एवलीन अपना सब कुछ बेच-बाचकर उसे शिमले ले आयी थी। हालाँकि पहाड़पर रहकर भी उसके रोगमुक्त हो जानेकी आशा नहीं थी, फिर भी वह उसे अपने पास एकान्तमें रखना चाहती थी। उसने समर-हिलमें एक छोटासा खस्ताहाल घर किरायेपर लिया था। वह खुद घरकी सफ़ाई करती थी,खाना बनाती थी, अस्पतालसे दवाई लाती थी और एक ओर पतिकी और दूसरी ओर बच्चे की देखभाल करती थी। बच्चेको पतिसे दूर रखनेके लिए उसे जो चेष्टा करनी पड़ी थी वह कई बार उसे रुला देती थी।

पर वह यथासम्भव आत्मवश रहकर बच्चेको टहलाने भी ले आती थी और उसे गुब्बारे भी ख़रीद देती थी।

कहानी पूरी करनेतक सतीश काफ़ी भावुक हो गया। उसने सामने दूरकी पहाड़ियोंपर दृष्टि गड़ाये हुए कहा, "इसे प्यार कहते हैं दोस्त! है न एक मिसाल?...फिर लोग कहते हैं कि ज़िन्दगीमें पैसा ही सब कुछ है। क्या चीज़ है पैसा? इन्सानकी भूख पैसेसे नहीं मिटती, प्यारसे मिटती है।"

और वह आँखें मूँदकर सिगरेटके लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा।

कुछ दिन बाद मैंने एक होटलमें छः सात तैलचित्र लगे हुए देखे जिनके साथ यह नोटिस लगा था कि वे बिकाऊ हैं। साथ पूछताछ के लिए एवलीन कपूरका समरहिल पता दिया हुआ था।

दिनके दस ग्यारह बजेका समय था जब कि होटलोंमें प्रायः सभी सीटें ख़ाली होती हैं। उस समय सारे हालमें मैं अकेला ही था। होटलकी शीशे वाली खिड़कियोंसे छन कर धूप उन चित्रों पर आकर पड़ रही थी। उन चित्रोंमें धूमिलसे लाल और मटमैले रंगका विशेष प्रयोग किया गया था। मैं काफ़ी देर तक उन चित्रोंको देखता रहा। मुझे चित्रोंकी ज़्यादा समझ नहीं है, फिर भी मेरे हृदय पर उनका कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा जैसे कोई मेरी ओर देखकर दीवानावार प्रलाप कर रहा हो और आसपास हर चीजको ठोकर लगानेकी चेष्टा कर रहा हो। एक चित्रका शीर्षक था 'गिद्ध'। उसमें गिद्धोंकी आँखें कुछ ऐसी थीं जैसे वह दुनियाकी हर चीज़का मज़ाक उड़ा रही हों और चोंचें कुछ इस तरह खुली थीं जैसे वे हर चीज़को निगल जाना चाहती हों। चोंचों और पंजों पर पुराने जमे हुए लहूके निशान थे। वह एक ऐसा चित्र था जिसे देखकर आँखें हटा लेनेको मन होता था और आँखें हटा लेने पर फिर देखनेकी कामना होती थी। 'दाता' शीर्षक चित्र भी कुछ ऐसा ही था। उसमें एक हड्डियोंका ढाँचा एक ठूँठके नीचे बैठा हाथका ख़ाली कटोरा शून्यकी ओर उठाये था। वे ऐसे चित्र थे जो

डरावनी छायाओंकी तरह दिमाग़में घर कर जाते थे। मैंने होटलके मैनेजरके पास जाकर उससे पूछ आया उन चित्रोंमेंसे कोई बिका भी है या नहीं।

"इन भूतोंकी तसवीरोंको कौन ख़रीदेगा ?" उसने बिल बुक खोलकर पेंसिलसे बिल बनाते हुए कहा, "मैंने उस औरतका दिल रखनेके लिए यहाँ पर लगा दी थीं, अब चार छः दिनमें उतार कर भेज दूँगा।"

"कोई तुम्हारे पास क़ीमत पूछनेके लिए भी नहीं आया ?" मैंने उससे पूछा।

"क़ीमत तो लोग शौकिया पूछ लेते है," वह बोला, "पर किसीका दिमाग बिगड़ा है कि हज़ार-हज़ार रुपया देकर इन तसवीरोंको ख़रीदेगा ? मै तो कहता हूँ कि कोई दस-दस रुपयेमें भी ख़रीदनेको तैयार हो जाय, तो बहुत मेहरबानी करेगा। मगर वह जाने इन्हें क्या समझती है ?"

"कितने दिन हो गये इन तसवीरोंको यहाँ लगे हुए ?"

"चौदह पन्द्रह दिन हो गये है।"

"इतने दिनोंमें कोई भी उससे बात करने नही गया ?"

"अरे यार," वह ओंठोंको ज़रा सिकोड़ कर बोला, "बात करनेके लिए तो पचास आदमी जाते है मगर उनका बात करनेका मक़सद तसवीरे ख़रीदना थोड़े ही होता है ? वे तो इसलिए जाते है कि दस मिनट बातका लुत्फ़ ले लें।....तुम भी हो आओ। पहले तो तीन चार दिन वह खुद ही यहाँ आती रही है, मगर अब नहीं आती। समरहिलसे दिनमें दो-दो बार यहाँ तक पैदल आती थी और पैदल वापस जाती थी। एक सरदार तो उस पर बुरी तरहसे रीझ गया था।" और वह बिल मेरी ओर बढ़ाता हुआ दाँत निकाल कर मुसकरा दिया।

दूसरी बार जब मैंने उसे देखा तब उसके पति की मृत्यु हो चुकी थी।

लोअर बाज़ारके आरम्भमें ही तीन चार ढाबे हैं जिनमें मज़दूर, छोटे मोटे दुकानदार और दफ़्तरोंके बाबू रोटी खाते हैं। उन्हींमें से एक ढाबेमें एक रात मैं खाना खा रहा था, जब वह बच्चेकी उँगली पकड़े हुए ढाबेके पास

से निकल कर आगे चली गयी। बच्चा चलता हुआ किसी चीज़की ज़िद कर रहा था और वह उसे मनानेकी कोशिश कर रही थी। थोड़ी ही देर बाद वह लौट कर आयी और इस बार ढाबेके सामने रुक गयी। बच्चा उसका हाथ पकड़ कर उसे ढाबेकी ओर खींचने लगा। होटलके लाला, नौकरों और वहाँ बैठकर खाना खाने वाले सब लोगोंकी नज़रें उस पर केन्द्रित हो गयीं। उसने क्षणभर दुविधामें इधर-उधर देखा और फिर बच्चेको साथ लिये हुए ढाबेके अन्दर आ गयी। अन्दर बैठे हुए लोग आँखों ही आँखोंमें एक दूसरेकी ओर इशारे करके मुसकराये। एक सरकारी दफ़्तरका क्लर्क स्वरके साथ उँगलियाँ चाटने लगा। एक नौकरके हाथसे दालकी कटोरी गिर गयी। वह बच्चेको लिये हुए कोनेमें बने हुए लकड़ीके केबिनमें चली गयी और महीनोंका मैला पर्दा उसने आगे खींच लिया। नौकर उधर आर्डर लेने जाने लगा तो लालाने उसे इशारेसे रोक दिया और स्वयं उठ कर आर्डर लेने पहुँच गया। पीछेसे एक बाबूने फ़बती कसी : "हम भी बैठे है सूद साहब !"

लाला आर्डर लेकर मुसकराता हुआ अपनी गद्दी पर लौट आया और नौकरसे बोला कि अन्दर एक आलूकी टिकिया दे आये।

लोगोंकी बातचीत प्रायः बन्द हो गयी थी और खामोशीमें खाना खाया जा रहा था। लोगोंकी आँखें, नासिकाएँ और ओंठ मुसकरा रहे थे। जो बातें कही नही जा सकती थीं उनका चटख़ारा लोग इशारोंमें ले रहे थे। नौकर जब आलूकी टिकिया प्लेटमें डालकर अन्दर ले गया तो सहसा अन्दरसे बच्चेके रुँआसे स्वरमे चिल्लानेका शब्द सुनायी दिया, "मै अण्डे खाऊँगा, मै अण्डे खाऊँगा।"

"मैं तुझे अण्डे खिलाऊँगी, ज़रूर खिलाऊँगी," उसकी माँका संयत स्वर सुनायी दिया, "पर इस समय नही, फिर कभी आयँगे।"

"मैं अभी खाऊँगा, अभी !" बच्चा फिर उसी तरह रोया।

"तुझसे कहा अभी नहीं," माँ बोली, "मैं तुझे रोज़ अण्डे खिलाया करूँगी, थोड़े दिन ठहर जा।"

बाहर ख़ामोशी और गहरी हो गयी थी। इशारेबाज़ी भी बन्द हो गयी थी। लोगोंके चेहरों पर हल्का खिसियानापन दिखायी दे रहा था।

"मैं रोज़ नहीं खाऊँगा, मैं सिर्फ़ आज ही खाऊँगा!" बच्चा मचल रहा था।

"आज तुम टिकिया खाओगे! खाओ!"

"नहीं, मैं सिर्फ़ टिकिया नहीं खाऊँगा।"

लाला अपनी जगहसे फिर उठा और एक प्लेटमें दो उबले हुए अण्डे रखकर अन्दर ले चला। लोगोंकी दृष्टियोंका भाव फिर बदल गया और एक आदमी थोड़ा खाँस दिया।

"यह बच्चेको दे दीजिए", उसने अन्दर जाकर कहा।

"आपसे किसने लानेको कहा है?"

"कहा तो किसीने नहीं, ये मैं अपनी तरफ़ से....।"

"इन्हें वापस ले जाइए।"

वह बुदबुदाता हुआ वापस लौट आया।

एक आवाज़ सुनायी दी, "मूद साहब, अण्डे घरकी मुर्ग़ियोंके है या बाज़ार की?"

लालाने एक बार आग्नेय दृष्टिसे कहने वालेकी ओर देखा और फिर हिसाबकी कापीके पन्ने पलटने लगा।

अन्दरसे बच्चेके सुबकनेका स्वर सुनायी दे रहा था।

"तू यह खायगा या नहीं?" माँने उससे तीखे स्वरमें पूछा।

बच्चा कुछ उत्तर न देकर सुबकता रहा।

"तो उठ चल यहाँसे।" उसने और भी सख़्त स्वरमें कहा, और वह बच्चेको लगभग घसीटती हुई बाहर निकल आयी।

उसके बाहर आने पर मैंने उसे ग़ौरसे देखा। वह पहले से काफ़ी बदली हुई थी। उसकी नीली आँखोंके नीचे हल्के हल्के काले दायरे बन गये थे। उसके ओंठों पर पपड़ियाँ जम रही थीं और गालों पर खुश्क सफ़ेदी झलक आयी थी। यद्यपि उसके शरीरका कसाव पहले जैसा ही था, फिर भी चेहरे पर अधिक प्रौढ़ता आ गयी थी। पंजाबी वस्त्र उस समय उसके शरीर पर उतने स्वाभाविक नहीं लग रहे थे। उसका बच्चा भी पहलेसे कुछ दुबला हो गया था और उसके ओंठ लगातार रोने वाले बच्चेके-से लग रहे थे। उसके नरम बाल सिर पर उलझ रहे थे और पलकोंमें आँसुओंकी दो बूँदे अटकी हुई थी। वह केबिनके बाहर आते ही तेज़ीसे अपना हाथ झटक कर माँसे पहले ढाबेके बाहर चला गया। एवलीनने गद्दीके पास रुककर पैसोंके विषयमें पूछा तो लालाने तेवरी चढ़ाये हुए उत्तर दिया, "चार आने।"

वह जानती थी कि एक टिकियाके उसे दो आन माँगने चाहिएं, इसलिए उसने तीखी नज़रसे लालाको देखा मगर बिना कुछ कहे दो दुअन्नियाँ उसकी गद्दी पर फेंक कर बाहर चली गयी।

"आज रेट बढ़ा दिये हैं सूद साहब ?" उसके चले जाने पर एक आवाज़ सुनायी दी।

"बड़ा दिमाग़ दिखा रही थी," लाला सब खाने वालोंको लक्षित करके बोला, "अब सारा दिमाग़ निकल गया कि नहीं ?"

और फिर सब कुछ पहलेकी तरह चलने लगा--बातें, क़हक़हे और दाल सब्ज़ीके लिए ज़ोर-ज़ोरकी पुकार। थोड़ी देरके लिए जो विराम आया था उसने शायद लोगोंकी भूख और बढ़ा दी थी क्योंकि तन्दूरमें रोटी लगाने वाला बहुत फुर्ती करता हुआ भी लोगोंकी माँग पूरी नहीं कर पा रहा था।

तीसरी बार मैंने उसे काफ़ी दिनोंमें देखा।

सतीश और मै शामको बालरूमकी तरफ़ जा रहे थे। महीनेके पहले सप्ताहमें हमलोग एकाध बार यह ऐयाशी कर लिया करते थे। हमें खुद नाचना नही आता था, और न ही वहाँ हमारा किन्हीं लोगोंसे परिचय

था । मगर अपने लिए इतना ही बहुत था कि कोनेमें बैठकर वहाँ नाचती हुई आकृतियोंको देख लेते थे । सतीश उनमेंसे कइयोंके इतिहास भी सुनाया करता था । शिमलेकी प्रायः सभी सोसाइटी गर्ल्ज़ वहाँ आती थीं । उनका मेक अप और उनकी मुसकराहटें दूरसे बहुत सुन्दर लगती थी । वहाँ मित्रताके नाम पर वे सौदे आसानीसे हो जाते थे जिन्हें सरे आम करना अपराध था ।

वह हमें बालरूमसे थोड़ी दूर कच्चे रास्ते पर दिखायी दी । वह अपने बच्चेको साथ लिये इलीज़ियम होटलकी तरफ़से आ रही थी । उसने साधारण छीटका फ्राक पहन रखा था । उसके बच्चेने वही लाल और सफ़ेद ऊनके कपड़े पहन रखे थे जो अब मैले हो रहे थे । वह बच्चेकी उँगली पकड़े ऐसी सूनी नजरसे सामने देखती चल रही थी जैसे उसे आसपास किसी वस्तुकी स्थितिका आभास ही न हो । उसे देखकर मेरे हृदय पर उस समय कुछ वैसी ही छाप पड़ी जैसी कि उसके पतिके बनाये हुए चित्रोंको देखकर पड़ी थी । उसके चेहरेके सौन्दर्यमें विशेष अन्तर नही आया था परन्तु चेहरेका भाव इतना बदल रहा था कि मै उसे शिमलेमें न देखकर और कही देखता तो शायद पहचान भी नही पाता । वह जैसे अपने स्वाभाविक रूपसे एक व्यंग्याकृतिमें बदल गयी थी ।

सड़कके मोड़के पास आकर वह मूँगफली वालेके पास रुक गयी । वह दो पैसे निकाल कर मूँगफली वालेको देने लगी तो बच्चेने उसका हाथ पकड़कर मचलकर कहा, "नही, मै नहीं लूंगा ।"

उसने बच्चेकी ठुड्डीको छूकर उसे पुचकारा और कहा, "तू मेरा कितना अच्छा बेटा है ! ममीकी हर बात मानता है । देख न कितनी अच्छी मूँगफली है ।"

"नही मै यह नही खाऊँगा," लड़का हठ पकड़कर बोला, "मैं कबाब खाऊँगा, मै आलूकी टिकिया खाऊँगा ।"

"नहीं बेटे", वह फिर समझाती हुई बोली, "ममीकी तू इतनी बात नहीं मानता ? मै तुझे आलूकी टिकिया भी खिलाऊँगी, सब कुछ खिलाऊँगी, मगर कुछ दिन ठहर जा। समझा न ? इस वक़्त तू यह मूँगफली ले ले, बहुत अच्छी भुनी हुई मूँगफली है।"

"नही, मैं कुछ नही खाऊँगा। कुछ नही खाऊँगा !" लड़का और अधिक मचलकर उसका हाथ छोड़कर आगे-आगे चल दिया। वह क्षण भर मूँगफली वालेके पास रुकी रही। फिर वह भी चल दी।

"इसके पास इसके पतिकी बनायी हुई बहुत-सी तसवीरे है", सतीश मुझसे बोला।

"मुझे पता है !' मैंने कहा।

"यह समझती है कि किसी दिन वे तसवीरे अच्छी क़ीमत पर बिक जायेंगी। यहाँ अक्सर लोग इससे तसवीर खरीदनेकी बात करते है, मगर फिर आपसमें इसका मज़ाक उड़ाते है। असलमें वे चाहते कुछ और ही हैं।

"मुझे पता है !' मैंने कहा।

हम सब लोग बालरूमके सामने पहुँच गये थे। बालरूमकी खिड़कियोंसे छन कर आती हुई रोशनी बहुत सुन्दर लग रही थी। ऊपरसे आर्केस्ट्राकी मीठी धुन सुनायी दे रही थी। बालरूमके समाजकी दो सुन्दर लड़कियाँ चहकती हुई बालरूमकी सीढ़ियाँ चढ़ रही थीं।

एवलीनका लड़का सड़क पर मुँह फुलाये खड़ा था। एवलीनने एक नज़र ऊपर जाती हुई लड़कियों पर डाली और बाल रूमकी रोशनीसे चमकती हुई पर्देदार खिड़कियों पर से फिसलती हुई उसकी दृष्टि हमसे मिली, फिर एकदम बच्चेके कन्धे पर हाथ रखकर उसे पुचकारती हुई वह आगे चल दी।

सीढ़ियों पर चढ़ते हुए हमने ऊपर तालियोंका शब्द सुना। शायद तभी कोई धुन बजकर समाप्त हुई थी।

●

शिकार

दादर, बाँदरा, सैंटाक्रुज़, अँधेरी--अँधेरी, सैंटाक्रुज़, बाँदरा, दादर, वही स्टेशन बार-बार आते और निकल जाते। पटवर्द्धन दरवाज़ेके पास खड़ा-खड़ा चर्चगेटसे अँधेरी तक गया था, अँधेरीसे ग्रांट रोड तक आया था, ग्रांट रोडसे फिर अँधेरी तक गया था और अब दूसरी बार अँधेरीसे लौट रहा था। आज कुछ न कुछ प्राप्त करना उसके लिए आवश्यक था। बृहस्पति, शुक्र और सनीचर तीन दिन खाली निकल गये थे। पैसे हाथ में रहते दस दिन भी अवसरकी प्रतीक्षा करनी पड़ती तो उसे उतावली न होती। वह व्यर्थ अपनेको संकटमें डालनेके पक्षमें नहीं था। परन्तु बुधवारको पंद्रह रुपये जुएमें हारकर उसके पास कुल डेढ़ रुपया बच रहा था, जिससे उसने किसी तरह अब तक का काम चलाया था। इस समय उस के पास केवल दो इकन्नियाँ थी। रातकी रोटीके लिए कुछ न कुछ पैदा करना आवश्यक था।

पिछली दादरफ़ास्ट गाड़ीमें उसका काम बनते-बनते रह गया था। ग्रांट रोडसे उस गाड़ीमें बहुतसे लोग चढ़े थे और दरवाज़ेके पास इतनी भीड़ हो गई थी कि कंधा हिलाना भी कठिन था। उस भीड़में एक पारसी की जेब उसकी बाँहके साथ सट गई थी। पटवर्द्धनने त्वचाके स्पर्शसे जान लिया था कि उसकी जेबमें चालीस पचास रुपयेके नोट हैं। यदि वह तेज़ गाड़ी न होती तो सैंट्रल स्टेशन पर ही वह पारसीकी जेबकी सफ़ाई करके उतर गया होता। केवल बाहर निकलनेके एक हल्लेकी आवश्यकता थी। परन्तु गाड़ी सात स्टेशन छोड़ कर बाँदरा जा कर रुकी, और इस बीच न जाने क्यों पारसीको कुछ संदेह-सा हो गया जिससे स्टेशन आने पर वह सतर्कता-पूर्वक पैसों वाली जेबपर हाथ रखे हुए गाड़ीसे उतरा। पटवर्द्धन

उसी तरह गाड़ीके दरवाज़ेसे टेक लगाये खड़ा रह गया जैसे वह ग्रांट रोड से बाँदरा तक आया था

इस बार अँधेरी स्टेशन पर पटवर्द्धनने गाड़ी बदली तो उसे अपनी टाँगोंमें थकान महसूस हो रही थी। उसे खड़े-खड़े यात्रा करते तीन घण्टे से अधिक समय हो चुका था। अब भी उसे खड़े रहना था क्योंकि उसका काम गाड़ीके दरवाज़ेके पास ही बन सकता था। कामका अवसर वे कुछ क्षण ही होते थे जब अंदर आने और बाहर निकलने वालोंमें संघर्ष होता था। थकानके कारण पटवर्द्धनने निश्चय किया कि वह दादर स्टेशन पर चाय पी कर कोई दूसरी गाड़ी पकड़ेगा।

सैंटाक्रुज़ पर दरवाज़ेके पास भीड़ हो गई। पटवर्द्धनकी आँखें नवागन्तुकों मे से एक नवयुवकके चेहरेपर कुछ क्षणोंके लिए रुकी। वह नवयुवक उसके बहुत पास खड़ा था। पटवर्द्धनको नवयवकके चेहरेकी रेखाएँ बहुत आकर्षक लगी। उसके अस्तव्यस्त घुँघराले बालो और विस्मित-सी बड़ी-बड़ी आँखोंमें उसे कुछ विशेषता लगी। वह उन व्यक्तियोंमें से था जिनके साथ अनायास बात करने को मन हो आता है। उसे जैसे अपने चारों ओर हर चीज़ अच्छी लग रही थी। पटवर्द्धन चेष्टापूर्वक उसके चेहरेसे आँखें हटा कर बाहर फैली हुई रेलकी पटरियोंको देखने लगा।

बाँदरा निकल गया। जब गाड़ी माहिम स्टेशन पर रुकने लगी तो नवयुवकने पास खड़े एक व्यक्तिकी बाँह छूकर उससे पूछा कि माटुंगा जानेके लिए उसे दादरसे कौन-सी बस पकड़नी चाहिए। पटवर्द्धनको उस व्यक्तिका बात करनेका लहजा भी आकर्षक लगा। उसे ईर्ष्या भी हुई कि नवयुवक उससे न पूछकर दूसरे व्यक्तिसे पूछ रहा है। उससे पूछता तो वह स्वयं जाकर उसे बस स्टाप तक छोड़ आता।

नवयुवकने जिस व्यक्तिसे प्रश्न किया था उसे स्वयं पता नहीं था कि दादरसे माटुगाके लिए कौन-सी बस मिलती है। उस व्यक्तिने पटवर्द्धनसे पूछा। पटवर्द्धनने सीधे नवयुवकको लक्षित कर के उत्तर दिया कि उसे

स्टेशनसे निकल कर 'जे' रूट बस पकड़नी चाहिए । फिर कुछ क्षण रुककर उसने नवयुवकसे पूछा, "आप बम्बईमें नये ही आये है ?"

"जी हाँ, कल ही आया हूँ", नवयुवकने उत्तर दिया ।

"कामसे आये हैं या घूमनेके लिए ?" पटवर्द्धनने पूछा ।

"कामकी तलाशमें आया हूँ", कहते हुए नवयुवकने अपना निचला ओंठ ज़रा-सा काट लिया । फिर उसने पटवर्द्धनसे पूछा, "आप यहीं रहते है ?"

"मैं पिछले पाँच सालसे यहाँ रह रहा हूँ ।" कहते हुए पटवर्द्धन थोड़ा कुण्ठित हो गया ।

"क्या काम करते हैं ?" नवयुवकने पूछा ।

"ग्रांट रोड पर मेरी जुराबोंकी फ़ैक्टरी है ।" यह उन अनेक उत्तरोंमेंसे एक था जो इस प्रश्नके पूछे जाने पर वह लोगोंको दिया करता था । उसे इसके लिए कुछ सोचना नहीं होता था । अनायास ही कभी वह कह देता कि वह एक दवाई कम्पनीका सेल्ज़मैन है । कभी कह देता कि वह जूते बनानेवालोंको चमड़ा सप्लाई करता है । हर बात वह बहुत स्वाभाविक ढंगसे कह जाता था । परन्तु उस समय उसे अपना स्वर कुछ अस्वाभाविक लगा । उसकी आँखें नवयुवकके चेहरेसे हट गईं ।

पास ही एक पाँच छः वर्षकी बच्ची अपने पिताका हाथ पकड़े खड़ी थी । वह पटवर्द्धनके मैले कपड़ोंके स्पर्शसे अपनी वायलकी नई फ़्राकको बचानेके लिए अपने पितासे सटी जा रही थी । बच्चीके ओंठ बहुत पतले और सुन्दर थे । उसकी गरदनकी हल्की-हल्की रेखाएँ जीवित शंखोंका स्मरण कराती थीं । नवयुवक भी बच्चीको देख रहा था । बच्चीसे आँख मिलने पर एक बार उसने प्यारसे उसकी ठुड्डीको सहला दिया । बच्ची मुसकराई । पटवर्द्धनकी कुण्ठा बढ़ गई । वह चेतन था कि बच्ची उसके स्पर्शसे दूर रहनेकी चेष्टा कर रही है । वह अन्दरके वातावरणसे आँखें हटाकर पुनः बाहर की ओर देखने लगा । दूसरी ओरसे आती हुई एक लोकल गाड़ी घड़घड़ाती पाससे निकल गई । रेलकी पटरियाँ तेज़ीसे विपरीत दिशामें जा रही थीं ।

कहीं-कहीं पटरियोंमें बत्तियोंके प्रतिबिम्ब दिखाई दे जाते थे। एक पुल तेज़ीसे निकल गया जिस पर दुनिया और ही दिशामें और ही गतिसे जा रही थी। गाड़ीकी चाल धीमी हो गई। दादर स्टेशन आ गया था।

गाड़ीके स्टेशन पर रुकते ही भीड़का दबाव बढ़ गया। उतरनेकी चेष्टा-में नवयुवकका शरीर पटवर्द्धनके शरीरके साथ सट गया। स्पर्शके पहले ही क्षणमे पटवर्द्धनने जान लिया कि नवयुवककी जेबमें चमड़ेका बटुवा है, जिसमें दस दसके या पाँच पाँचके बारह तेरह नोट है। बाहरसे आने वालोंकी उतावलीके कारण गाड़ीसे उतर पाना कठिन हो रहा था। नव-युवक बच्चीको हाथका सहारा दिये हुए था। कुछ व्यक्तियोके टोकरियाँ लिये हुए अन्दर आ जानेसे संकुलता और भी बढ़ गई। पटवर्द्धनकी चेतना उसके हाथमें चली गई। नवयुवकका शरीर सरकने लगा। पटवर्द्धनका हाथ भी सरकने लगा। पटवर्द्धन नवयुवकसे पहले प्लेटफार्म पर उतर गया। नवयुवक बच्चीको हाथोंमें उठाये हुए उतरा। बच्चीको उसके पिताके संरक्षणमें देकर वह उससे बात करता हुआ पुलकी ओर चलने लगा।

उस समय पटवर्द्धन चायके स्टालकी ओटमें खड़ा था। उसकी दृष्टि नवयुवकका अनुसरण कर रही थी। गाड़ी झटके साथ चल पड़ी। पटवर्द्धनके पैर गाड़ीकी ओर बढ़े, पर फ़ुटबोर्डो पर इतने लोग खड़े थे कि भागते हुए कही स्थान बना लेना संभव नही था। गाड़ीकी घड़घड़ाहट वातावरणमें फैलकर विलीन हो गई। पटवर्द्धनकी दृष्टि पुलकी ओर गई। नवयुवक पुल पार कर रहा था। कुछ ही क्षण बाद भीड़के रेलेमें नवयुवक का चेहरा अदृश्य हो गया।

पटवर्द्धनकी दृष्टि चायके स्टाल पर रुकी। एक आदमी जल्दी-जल्दी चायकी प्यालियाँ भरकर पत्थरके सफ़ेद काउण्टर पर रखता जा रहा था। पटवर्द्धनको लगा जैसे वातावरणमें आवश्यकतासे अधिक खामोशी आ गई है। सहसा दूरसे एक गाड़ीके आनेका शब्द सुनाई देने लगा। एक दादर फ़ास्ट गाड़ी तेज़ीसे निकल गई। गाड़ीके निकल जाने पर पटवर्द्धनको लगा

कि वह वातावरणमें निरन्तर गाड़ीके चलनेकी घड़घड़ाहट चाहता है, साथ अपने चारों ओर भीड़का दबाव चाहता है और....।

ग्रांट रोड जाने वाली दूसरी गाड़ीके आनेमें छः सात मिनिटकी देर थी। पटवर्द्धन पतलूनकी जेबोंमें हाथ डाले खड़ा था। उसका बायाँ हाथ दो इकन्नियोंको सहला रहा था और दायाँ हाथ चमड़ेके बटुवेको जिसमें अनुमानतः दस दसके या पाँच पाँचके बारह तेरह नोट थे।

सिग्नलोंकी रंगीन रोशनियाँ जैसे एकटक उसीकी ओर देख रही थी। वातावरणमें मनुष्योंके स्वरकी गूँज भी जैसे उसीके चारों ओर मँडरा रही थी। उसे यह चीज़ अच्छी लग रही थी कि स्टाल वाला लगातार चायकी प्यालियाँ भरकर काउण्टर पर रखता जा रहा है, जिससे उँडेली जा रही चायमे से निकलती हुई भापके हल्के-हल्के कुंडल बार बार प्रकट होकर ओझल हो जाते है और सफ़ेद पत्थरसे प्यालियोंके टकरानेका शब्द निरन्तर सुनाई देता रहता है।

बत्तियोंकी रोशनीमें प्लेटफ़ार्मके पत्थर चमक रहे थे। पाससे निकलते हुए मनुष्योंकी ठिगनी तिरछी छायाएँ पत्थरोके अन्दर चलती प्रतीत होती थीं। पटवर्द्धनके मस्तिष्कमें भी कुछ छायाएँ चल-फिर रही थी...

बिजलीके खंभेके नीचे फ़ुटपाथके पत्थर चमक रहे थे। उस फ़ुटपाथ पर वह सोमके साथ लेटा हुआ है। सोमकी त्वचा कसी हुई है, उसके माथे पर गहरी लकीरें है और उसके बाल रूखे तथा अस्तव्यस्त हैं। सोम उससे कह रहा है, "बाबू, बंबई में चाँदीकी ईंटें बाज़ारोंमें बिखरी रहती है। यहाँ आकर आदमी दिनोंमें कुछ का कुछ बन जाता है—लखपति, करोड़पति, एक्टर, डायरेक्टर..."

वह सोमकी बात ध्यानसे सुन रहा है। उसका वह बंबईमें पहला दिन है। वह वहाँ देवलालीसे भागकर आया है जहाँ वह अपने मामाके घरमे रहता था और जहाँ उसे दिनरात मामाके हाथों पिटना पड़ता था। कल्पना में अब वह अपनेको तरह-तरहके वस्त्रोंमें देखता है, गुजराती सेठके

पारसी युवकके, बसके कण्डक्टरके और फ़ुटपाथपर बैठने वाले पान वाले के...

सबेरे उठकर वह देखता है कि सोम उसके उठनेसे पहले ही वहाँसे चला गया है। वह अँगड़ाई लेकर अपनी जेबमें हाथ डालता है। उसके सब पैसे भी उसकी जेबमेंसे चले गये हैं...

बड़ी-बड़ी इमारतें, बसें, ट्रामें, इन्सान और शीशेके शो-केसों में बन्द डबल रोटियाँ...

फैली हुई सड़कें और गाड़ियोंके घूमते हुए पहिये...

रातको फ़ुटपाथपर इकट्ठे होते हुए लोग—मज़दूर, भिखमंगे, जेबकतरे, वेश्याओंके दलाल—पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे...

एक बच्चा रो रहा है....

एक व्यक्ति जिसके चेहरेका मांस सूख गया है और जिसकी आँखें गोल गोल दिखाई देती हैं, खंभेसे टेक लगाये बीड़ी पी रहा है....

एक किश्तीनुमा कार पाससे फिसलती हुई निकल जाती है....

बीड़ी पीने वाला विस्फारित नेत्रोंसे कारकी गतिका अनुसरण करता है और आधी पी हुई बीड़ीको बुझाकर जेबमें रख लेता है।

"मज़दूर!" कोई आवाज़ देता है।

फ़ुटपाथ परसे दस पन्द्रह आदमी उठकर दौड़ पड़ते हैं।

"आज कुछ काम मिला?" एक नवयुवक उससे पूछ रहा है।

"नहीं। तुझे कुछ मिला?"

"नहीं, मुझे भी नहीं मिला।"

एक स्त्री जिसकी आयुका कुछ अनुमान नहीं होता, लेटी हुई कराह रही है....

एक युवक जिसकी बनियानमें जगह-जगह सूराख़ हो रहे हैं, बाँह खुजलाता हुआ कह रहा है, "मधुबाला मधुबाला है प्यारे! उसका एक क्लोज़अप देखकर पैसे वसूल हो जाते हैं...."

एक ओरसे शोर सुनाई दे रहा है—महमूदने निबोलकरके चाक़ू मार दिया है....।

"ये लोग बहशी हैं" कोई किसीसे कह रहा है।

एक पत्थर ट्रामकी खिड़कीसे टकराता है...

पुलिसका सिपाही उसे घसीटकर ले जा रहा है। वह चिल्ला रहा है, "नही, मै नहीं था! नहीं, मै नही था!"

गाड़ीमें भीड़का दबाव बढ़ रहा है। घुँघराले बालों वाले नवयुवक का शरीर उसके शरीरके साथ सट रहा है। नवयुवक हाथसे बच्चीको सहारा दिये हुए है। उसका हाथ नवयुवककी जेबकी ओर सरक रहा है।

सिग्नलकी बत्तीका रंग बदल गया।

पटवर्द्धनका ध्यान फिर चायके स्टालकी ओर चला गया। स्टालवाला उसी तरह चायकी प्यालियाँ भर-भरकर काउण्टर पर रखता जा रहा था। उँडेली जा रही चायसे निकलती हुई भापके हल्के-हल्के कुण्डल बार-बार दिखाई देते और ओझल हो जाते थे।

गाड़ी आ रही थी।

पटवर्द्धनका हाथ बाई जेबमें पड़े हुए बटुएको सहला रहा था। उसे ऐसा महसूस हो रहा था कि वह पटवर्द्धन नही सोम है, और उसने अभी-अभी पटवर्द्धनकी जेब काटी है।

गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आ गई।

गाड़ीका जो डिब्बा पटवर्द्धनके सामने रुका, उसके बाहर लटकते हुए एक नवयुवकने पटवर्द्धनकी ओर देखकर एक प्रश्नात्मक संकेत किया जिसका अर्थ था कि कोई शिकार हाथ लगा कि नहीं?

पटवर्द्धन उसके संकेतका कोई उत्तर नहीं दे सका।

उस नवयुवकने ओंठ ज़रा-सा बिचका कर फिर आँखसे संकेत किया जिसका अर्थ था कि वह स्वयं अभी तक ख़ाली हाथ है।

पटवर्द्धन केवल स्थिर दृष्टिसे उसकी ओर देखता रहा।

गाड़ीने सीटी दी और चल पड़ी ।

पटवर्द्धनका अन्तर्मन उस समय व्याकुलता-पूर्वक चाह रहा था कि जीवन लौटकर कुछ मिनिट पीछे उस स्थिति पर चला जाय जब उसके चारों ओर भीड़का दबाव बढ़ रहा था पर उसका हाथ अभी नवयुवककी जेब तक नहीं पहुँचा था ।

गाड़ीके आधे डिब्बे निकल गये थे ।

तभी उसने देखा कि घुँघराले बालों वाला नवयुवक पुलकी सीढ़ियाँ उतर रहा है । नवयुवकका चेहरा उस समय बहुत विकृत हो रहा था ।

गाड़ीका अन्तिम डिब्बा निकल रहा था ।

सहसा पटवर्द्धनकी टाँगोंमें गति आ गई । वह भागा और गाड़ीके अन्तिम डिब्बेका डंडा पकड़ कर फ़ुटबोर्डके साथ लटक गया । क्षण भर में पुल दूर हो गया, प्लेटफ़ार्म पीछे रह गया और नवयुवकका चेहरा आँखोंसे ओझल हो गया ।

अब फिर रेलकी पटरियाँ तेज़ीसे विपरीत दिशाकी ओर जाती दिखाई दे रही थीं । गाड़ीकी एक बत्तीका पटरी पर पड़ता हुआ प्रकाश गाड़ीके साथ-साथ चल रहा था । पटवर्द्धन दायें हाथसे डंडेको पकड़े था और बायें हाथसे जेबमें पड़े बटुएको ।

परन्तु अब उसका अन्तर्मन व्याकुलतापूर्वक चाह रहा था कि जीवन लौटकर उस स्थिति पर चला जाय जब गाड़ीका अन्तिम डिब्बा निकल रहा था और वह अभी प्लेटफ़ार्म पर ही था ।

अन्दर कोई किसीसे कह रहा था कि वह तेज गाड़ी है और चार स्टेशन छोड़कर सीधी ग्रांट रोड जा कर रुकेगी ।

●

उलझते धागे

घंटाघरकी घड़ीने अभी-अभी नौ बजाये हैं।

थोड़ी देर पहले तक रिजपर काफ़ी चहल-पहल थी। सैर करनेवालों के झुण्ड के झुण्ड नीचे मालरोडकी तरफ़ जा रहे थे और उधरसे ऊपरकी तरफ़ आ रहे थे। अब यहाँ खामोशी छा गई है। किनारेकी बेंचों पर बैठकर इस लोकसे उस लोक तककी चर्चा करनेवाली बूढ़ोंकी मण्डली भी उठकर चली गई है। वह अफ़गानी टोपी वाला डाक्टर जो रेलिंगके सहारे खड़ा होकर सिगरेटके कश खींच रहा था, अब बड़े अस्पतालकी गोरी नर्सके साथ बातें करता हुआ कैथूके रास्ते पर चला गया है।

मालरोड सुनसान हो गयी है। वैसे मालरोड इसका पुराना नाम है। अब सरकारने इसका नाम बदलकर लाजपतराय रोड कर दिया है। परन्तु नया नाम पाकर भी इस सड़कका रंग-ढंग वही पुराना है। वही लोग आते हैं और रोज़ उसी तरह चहलक़दमी करके चले जाते हैं। पर खैर, मालरोड अब सुनसान हो गयी है। रिजपर विरानी छा गई है। थोड़ी देर पहले घंटाघरकी घड़ीकी सूइयाँ बहुत तेज़-तेज़ चल रही थीं मगर अब जैसे एक ही जगहपर जम गयी हैं। ऊपरके सिनेमाघरसे आवाज़ें आ रही हैं, जैसे पहाड़की चोटीपर कोई भटकी हुई रूह ज़ोर-ज़ोरसे चिल्ला रही हो।

हवाघरके बाहर इस वक़्त हम चार आदमियोंके सिवा और कोई नहीं है। हमारे आगे हमारा ख़ाली रिक्शा है और फिर दूरतक कोलतार की लम्बी सड़क है। हमें यहाँ बैठे सवा डेढ़ घंटा हो गया है। आज सारा दिन कोई भी सवारी नहीं मिली। अड्डेसे संजौली और संजौलीसे यहाँ तक बस ख़ाली रिक्शा ही खीचा है। अब तो नौ बज गये हैं, अब सवारी

मिलनेको कोई उम्मीद भी नहीं है। फिर भी बैठकर इंतज़ार तो करेंगे ही। कहते हैं सवारी और मौतका कोई पता नहीं होता। सवारी और मौत। ...मेरा बाप फेफड़ोंके बुखारमें मरा था। अब तो उसे मरे भी पाँच साल हो गये। पाँच सालसे मैं सवारियाँ खींच रहा हूँ। मेरा बाप सत्रह बरसका था जब वह इस काममें लगा था। मैं जब लगा तो मैं पूरे चौदह का भी नही था। हमारा यह पुश्तैनी धंधा है। लेकिन एक बात मेरी समझमें नहीं आती—हम सवारियाँ ढोते हैं कि पेट भरें और पेट भरते हैं कि सवारियाँ ढोयें—बड़ी अजीब बात लगती है।

हम चारोंने बीड़ियाँ सुलगा रखीं हैं। बीड़ीका लंबा कश खींचना मुझे बहुत अच्छा लगता है। बीड़ीका आगेका हिस्सा एकदमसे चमक उठता है, जैसे उसमें जान आ जाती है। मुँहसे हटाते ही बीड़ी फिर बेजान हो जाती है। बहुत-सी बातें हैं जो मेरी समझमें नहीं आतीं। कभी कोई बात समझमें आ जाती है और फिर एक दमसे निकल जाती है। ....रिक्शा खींचनेमें मुझे एक बात अच्छी लगती है। आदमी दिनभर एक जगहसे दूसरी जगहकी तरफ़ चलता रहता है। एक जगह टिक कर मज़ा नहीं आता। मगर जब कभी भरी हुई घासपर लेटनेको मन हो या चीड़की टहनियाँ तोड़ने को मन हो तो भी रिक्शेके आगे जुते रहो, यह बुरा लगता है। जब मेंह बरसता है या ओले पड़ते हैं और बरफ़ गिरती है तो गाँवकी दुकानके अँधेरेकी याद करके बड़ा हिरख होता है। मन होता है कि घर जाकर एक कोनेमें दुबक जायें और तम्बाकू पीते हुए आग तापते रहें। मगर कहाँ ?..घर बैठे रहें तो धंधा कौन करेगा और रोटी कौन कमाएगा ? कभी-कभी तो पैर बरफ़से सुन्न हो जाते हैं, नीचेसे पैरोंमें पत्थर गड़ते है, एक-एक क़दम उठाना मुश्किल हो जाता है, फिर भी रिक्शा लिये हुए भागते रहते हैं—आख़िर रोटीका मामला है, काम नहीं करें तो खाना कहाँसे खायें ?

हवाघरके अन्दर एक बाबू बीबीके साथ बैठा है। लगता है कि दोनों का नया-नया व्याह हुआ है। दोनों एक दूसरेसे सटकर बैठे हैं, पर बिल्कुल

नावाकिफ़ोंकी तरह कभी कभार ही एकाध बात कर लेते हैं। कभी दोनों की आँखें मिली रहती हैं और कभी हाथ। दोनों बड़े मगन होकर बैठे हैं।

"ठंड हो गई है!" बीबी ज़रा काँपकर कह रही है।

बाबू ओठोंमें से सिर्फ़ चूमनेकी सी आवाज़ निकालकर चुप हो गया है। उसका ध्यान शायद दूसरी तरफ़ है।

"देखो मेरे पैरके तलुवेपर कितना बड़ा छाला हो गया है!" बीबी अपना सैंडल उतारकर बाबूको अपना पैर दिखा रही है, "मुझे पैदल चलने की ज़रा आदत नही है।"

मगर बाबूका ध्यान कहीं और है—शायद मालरोडपर, या वहाँसे भी दूर, बहुत दूर, न जाने पहाड़ोंसे भी आगे—वह जाने किस सोचमें पड़ा हुआ है

यहाँ पैरोंमें कितने ही सूराख़ हो रहे हैं। पैरोंको छूकर मुझे वैसी ही झुरझुरी होती है जैसे दीमक खायी लकड़ीको छूकर होता है। यह अंगूठेके नीचे एक बड़ा सूराख़ है, इसके आस-पास कितने ही छोटे-छोटे सूराख़ और हैं। अब तो पैरोंकी चमड़ी बिल्कुल मर गयी है। बर्फ़ और पत्थरको छोड़ कर और किसी चीज़का पैरोंके नीचे पता ही नहीं चलता। शिब्बी मेरे पैरों के सूराख़ोंपर उगलियाँ फेरती है तो उन उँगलियोंका भी कुछ पता नहीं चलता। मगर जब वह देरतक हाथ फेरती रहती है तो जैसे इन सूराख़ोंमें जान आ जाती है और हल्की-हल्की सिहरन महसूस होने ल ती है। शिब्बी की उँगलियोंको अपने हाथोंमें लेकर मलना मुझे बहुत अच्छा लगता है। पहले उसकी उँगलियाँ बड़ी मुलायम थीं। अब तो रोज़-रोज़ घास छीलनेसे उसकी उँगलियाँ भी कड़ी हो गयी हैं और उसका माँस फटा फटा-सा रहने लगा है। उसके पैरोंमें भी अब सूराख़ हो गये हैं। बेचारी रोज़ एक गट्ठर घास काटती है और ऊपर मंडीमें बेचनेके लिए लाती है। उसका बाप बड़ा हरामख़ोर है। बुड्ढा आप हाथ तक नहीं हिलाता और सारा काम उसीसे कराता है। शिब्बी कहीं मेरे घरमें आ जाय तो मैं कभी उसे घास

बेचनेके लिए न आने दूँ। मंडी वालोंकी बद नज़र कौन रोक सकता है ? मगर उसके बापको तो उसका सौ रुपया चाहिए, इतना रुपया कहाँसे आय ? और जबतक रुपया नहीं, उससे व्याह भी नहीं हो सकता। मैं कहता हूँ बुड्ढेको छोड़, हम यहाँसे और कहीं चले चलते हैं, पर उसकी समझमें बात आती ही नहीं। मूरख बुड्ढेको रोटियाँ खिला-खिलाकर परान दे देगी।

रातको गाँव भी पहुँचना है। शिब्बीने कहा था आज रात वह तिरशूल वाले शिखरके नीचे मिलेगी। गाँव है तो अड्डे से दो ही मील मगर रास्ता बड़ा बेढब है। हम तीन आदमी अक्सर साथ ही जाते हैं इसलिए रास्ता ज़रा ठीकसे कट जाता है। लौटते हुए कभी आधी रात हो जाती है। उस वक़्त तो हम चलते नहीं, पत्थरोंपर लुढ़कते जाते हैं। मगर गाँव पहुँचकर सारी थकान दूर हो जाती है। गाँवकी मिट्टीकी ख़ुशबू कुछ और-ही है। घरके पाससे ही जो झरना बहता है उसके पानीकी छलछल सारे शरीरको थपकियाँ-सी देती है। घरकी दहलीज़के बाहर दूरतक घुप अँधेरा फैला होता है। उसमें भटकते हुए कीड़ोंकी आवाज़ें ऐसे आती हैं जैसे कोई पानी में डुबकियाँ लगा रहा हो। कालू और दयालू झरनेकी ढलानके पास बैठ कर देर-देर तक गीत गाते रहते हैं। वह झरना गीतोंका घर-सा है, अड्डेपर या और कही बैठकर वही गीत गायें तो बहुत बेगाना-सा लगता है।

"**कियाँ बोलदाऽ ओ ऽऽऽऽ कियाँ बोलदा ऽऽ** ?

किया बोलदाऽ मेरी जाऽन भाबी कुक्कू कियाँ बोलदा ?"

"यह पहाड़ी गीत कितना अच्छा है ?" हवाघरमें बैठी हुई बीबी कह रही है।

बाबू मुँहसे सिर्फ़ 'पिच्' की आवाज़ पैदा करके कोटका कालर ऊँचा कर रहा है।

"भूख तो नहीं लगी ?" वह पूछता है।

"नहीं, अभी नहीं।" और वह हवा के झोंके से सिहर कर उसके साथ और सट गयी है।

सामने घाटीके पार तारादेवीका मन्दिर है। उसकी दो बत्तियाँ सुनहरी कबूतरियोंकी तरह काँप रही हैं। पहाड़ीके पीछेसे गहरा बादल उठ रहा है। जब बिजली चमकती है तो घाटीमें दूर दूर तक बिखरे हुए कितने ही घर दिखायी दे जाते हैं।

एक लम्बे कानोंवाला कुत्ता हवाघरकी तरफ़ मुँह करके भौंक रहा है। एक बार हवाघरका चक्कर लगाकर वह बाहर निकल आया और लगातार भौंके जा रहा है। बाबू अपनी बीबीके कोटके बालोंपर हाथ फेर रहा है। उसके कोटके बाल बड़े मुलायम लगते हैं। और यह कालू यहाँ अपने रीछ जैसे बालोंको खुजला रहा है। सामने स्कैंडल पाइंटकी नीली बत्ती धुँधली होती जा रही है। तारादेवीकी तरफ़से उठता हुआ बादल हमारे आस-पास घिर आया है। इधर यह घंटाघर कैसा भूत-सा लगने लगा है? सामने होटलकी चिमनी और खिड़कियाँ बादलमें घिरकर ओझल हुई जा रही हैं। सब तरफ़ बादल ही बादल घिर आया है। आसमान पर भी बादल है और चारों तरफ़ घाटियोंमें भी। बत्तियोंकी रोशनी छोटे-छोटे दायरोंमें बंद हो गयी है। कोलतारकी सड़क दो तीन गज़ दूर तक दिखाई देती है, बस। बादल गहरा होकर धीरे-धीरे ऊपर उठ रहा है। हल्की-हल्की बूँदें टीनकी छतोंसे टकराने लगी हैं।

"ओ कियाँ बोलदा ऽऽ मेरी जान भाबीऽ
कुक्कू कियाँ ऽऽऽ बोलदाऽऽऽ ?
मंडियाँ सुकेताँ भाबी सोणे साणे राऽजे, ओऽऽऽऽ
मंडियाँ सुकेताँ भाबी..."

रिजकी खामोशी टूट गयी है। नीचे वाले सिनीमाकी खड़ुसे एक औरत और मर्द भागते हुए आ रहे हैं। औरत बहुत भारी भरकम है और छोटा-सा रेशमी छाता लिये हुए आगे-आगे आ रही है। मर्द भी मोटा और नाटा है और तेज़ भागकर उसके बराबर आनेकी कोशिश कर रहा है। ज्यों-ज्यों बादल ऊपर उठता जाता है, कोलतारकी सड़क दूरतक निकलती

आती है। पानी भी ज़ोर पकड़ रहा है। बृहस्पतकी झड़ी है, शायत पूरे सातदिन बरसेगी।

औरत और मर्द कैसे तेज भागे आ रहे हैं ?

"रिक्शा सा'ब ?"

"रिक्शा मेम सा'ब ?"

वे बिना बोले भागते ही जा रहे हैं। औरत बड़ी तेज़-तेज़ अंगरेज़ी बोल रही है—वट एट इट फिट फिट फिट टू मच। वेल गिट गिट चैंग चिंग होम आल राइट !

उसी तरफ़से ये दो नौजवान लड़के बाँहमें बाँह डाले आ रहे हैं। इनके पास छाता या बरसाती कोट कुछ नहीं है फिर भी वे कैसे आरामसे बात करते आ रहे हैं ? दोनों दुबले-पतले हैं, सिर्फ़ एक जरा छुटकू है और दूसरा लम्बू है। छुटकू बड़ा झूम-झूमकर चल रहा है और कोई शेर सुना रहा है:

"—जब खलाओंमें उभरती हो अबाबील कोई...

आय हाय हाय, हुस्न देखा, उड़ती नहीं, तैरती नहीं, उभरती हो अबाबील कोई—"

लंबू वाह वाह कर रहा है। जाने किस बात पर दोनों ज़ोर से ठहाका लगा उठे हैं ?

"रिक्शा सा'ब ?"

"रिक्शा माँगता है सा'ब ?'

वे बिना इधर की ओर देखे ही आगे जा रहे हैं। कोलतारकी सड़क पर उनके जूते तपत् तपत् की आवाज़ कर रहे हैं।

"इन बेचारोंकी भी क्या ज़िंदगी है ?" छुटकू कह रहा है।

"मज़दूर की ज़िंदगी हो ही क्या सकती है ?"

"हम भी तो मज़दूर हैं।"

"हमारी भी क्या ज़िंदगी है ?"

"चार आदमी मिल कर एक आदमीको खींचें, यह हैवानियत है।"

"तेरे पास सिगरेटके लिए एक आना है ?"

"नहीं। तेरे पास ?"

"नहीं।"

"इस मुल्कमें आर्ट इस तरह भूखा मरता है।"

और वह फिर गुनगुना रहा है—**जब खलाओंमें उभरती हो अबाबील कोई...**"

आगे पता नहीं वह क्या कह रहा है, मैं तेरे कालुको रुस्खारमें कि काकुलो सुख्तार में क्या हो जाता हूँ...

कुछ लड़कियाँ दोपट्टोंमें सिर और मुँह लपेटे और हाथों से अपनी सलवार उठाये लक्कड़मंडीकी तरफ़ भागी जा रही हैं।

पानी बहुत ज़ोरसे पड़ रहा है। रिज पर नाखून भर का दरिया बह रहा है। पानीके पर्देके उस तरफ़ तारादेवीकी पहाड़ी पर दो सुनहरी कबूतरियाँ फिर दिखायी देने लगी हैं।

"पानी इतने ज़ोरसे बरस रहा है, आज घर कैसे पहुँचेंगे ?"

हवाघर में बैठी हुई बीबी कह रही है, मुझे पता होता तो मैं यह साड़ी पहन कर कभी न आती। आज रास्तेमें इसका सारा बार्डर खराब हो जायगा।"

"रिक्शा सा'ब ?"

बाबूने सिर हिला दिया है। बेचारे के पास शायत पैसे नहीं होंगे।

"थोड़ी देर बाद ?"

बाबूने फिर सिर हिला दिया है। बेचारा बाबू !

बारिश कुछ हल्की हो रही है। अब शायत कोई सवारी नहीं मिलेगी। रिक्शाको चल कर शेडमें छोड़ दें। वहाँ से मैं घंटे भर में गाँव पहुँच जाऊँगा। कालू और दयालू तो शायत आज शेडमें ही सोयेंगे। गाँव पहुँचने तक बारिश भी रुक जायगी। शिब्बी तिरशूल वाले शिखर

के नीचे ज़रूर मिलेगी। वह शायत कुछ भुने हुए दाने लेकर आय। बारिशकी रातमें गुड़ के साथ भुने हुए दाने मिल जायँ, तो बस...

"कालुआ !"

"हा।"

"चलना है कि अभी बैठे रहना है ?"

"चलो।"

कालूके दाँत कटकटा रहे हैं। इसे ज़रा सी सर्दीसे बुखार हो जाता है। शेडमें इसके पास कुछ ओढ़नेको भी नहीं है। पिछली रात धरमेकी लोई-के साथ सटकर सो रहा था; सुबह उठते ही कहता था कि सारा शरीर टूट रहा है। आज दिनभर दौड़ना नहीं पड़ा, नहीं तो यह तो उलटा हो जाता। अब इसके दाँत कटकटा रहे हैं, रातको इसे फिर बुख़ार हो आया तो...

"ए रिक्शा !"

"लाया मेम सा'ब !"

फिर वही बूढ़ी मेम ! कहीं न कहीं, किसी न किसी चढ़ाई या उतराई पर यह रोज़ दिखाई दे जाती है। इसका घर शिमलेकी खड्डमें है—अब इसे लेकर छोटे शिमले जाना पड़ेगा।

रिक्शाके पहिये तेज़ीसे घूम रहे हैं। हमारे पैर कोलतार की सड़कपर धमक पैदा कर रहे है...

हवाघर पीछे छूट रहा है। लम्बे कानोंवाला कुत्ता फिर हवाघर की तरफ़ मुँह करके भौंक रहा है। नालेमें बहुत पानी आ गया है, वह आज फुफकारता हुआ बह रहा है। दूर किसी घरसे हल्की-हल्की बंसरी की आवाज़ सुनाई पड़ रही है।

क्लारक होटल....

मरीना होटल....

पटियाला हौस.....

मेम रिक्शेमें बहुत अकड़कर बैठी है। अक्सर यह बैठी-बैठी नाहक मुसकराती रहती है। रिक्शेमें बैठती है तो मुसकराती है, उतरती है तो मुसकराती है। रास्तेमें कोई वाकिफ़ दिखाई दे जाय तो उसकी तरफ़ देखकर मुसकराती है और सिर हिलाती है। इसकी मुसकराहट जैसे ओठोंमें से ही पैदा हो जाती है।

सामने कच्ची उतराई है। अगले मोड़पर गहरी ढलान है। अगर हमलोग रिक्शा छोड़कर हट जायँ और रिक्शाको अपने आप ढलानपर लुढ़कने दें तो..... ? रिक्शा लुढ़कता हुआ सामनेकी चट्टानसे जा टकरायगा और मेम रिक्शासे उछल कर खड्डमें जा गिरेगी। खड्डमें गिरकर भी क्या वह एक बार उसी तरह मुसकरायगी...?

पैरके नीचे शायत केंचुआ दब गया है। एक ही पलमें मरकर वह शायत परलोक चला गया। अब वह वहाँसे नयी जून लेकर आयगा। हो सकता है अब यह आदमी बनकर जनम ले। आदमीके रूपमें जनम लेकर इसको भी रोटीके लिए काम करना पड़ेगा। यह क्या काम करेगा ? शायत यह भी बड़ा होकर हमारी तरह मेमका रिक्शा खींचेगा। फिर ढलानपर आकर इसका भी मन करेगा कि मेमका रिक्शा लुढ़कनेके लिए छोड़ दे। यह भी हो सकता है कि यह मरकर मेमकी जूनमें पड़े, और हमें इसे रिक्शेमें बिठाकर खींचना पड़े। फिर यह भी मेमकी तरह तनकर बैठेगा और मेमकी तरह ही मुसकरायगा।

यह मेमकी कोठी आ गयी। मेमका कुत्ता जीभ लपलपाता हुआ अन्दर से भागा आ रहा है। मेम कुत्तेकी तरफ़ देखकर मुसकरा रही है। मगर इसकी यह मुसकराहट काफ़ी लम्बी है और ओंठोंमें से ही पैदा हुई नहीं लगती।

"कालुआ।"

"हो।"

"तेरे दाँतोंकी फिर किटकिटी बज रही है ?"

"ठंड लगती है।"

"बुख़ार तो नहीं ?"

"क्या मालूम ? पता नहीं बुख़ार ही हो... ।"

अब तू अड्डेमें जाते ही सो जा। आज धरमेकी लोईमें इसके साथ सो जाना। बाहर नहीं पड़ा रहना। समझा ?"

"धरमे पर है, धरमा अगर सुला ले तो..."

"क्यों धरमे ?"

"सो जाय, रात ही काटनी है। मुझे इसकी कुछ गरमी ही रहेगी।"

सामने वापसीकी लम्बी चढ़ाई है। कच्ची सड़ककी चढ़ाई चढ़ते हुए बहुत ज़ोर लगता है। पक्की सड़क आ जाय तो दूसरी तरफ़ से गाँव चला जाऊँ। ये लोग रात शेडमें ही काटेंगे। बारिश बिल्कुल रुक गयी है। शिब्बी ज़रूर तिरशूल वाले शिखरके नीचे पहुँच गयी होगी। तेज़ चलूँगा तो पौन घंटेमें पहुँच जाऊँगा। आज शिब्बीसे फिर कहूँगा कि उस बुड्ढे का कज़िया छोड़ दे। वह कहीं बात मान ले और मेरे साथ चली चले तो...

"रिक्शा।"

"बैठिए सा'ब।"

"बालूर गंज।"

मनीजर सा'बको आज फिर बालूरगंज जाना है। बालूरगंजमें इसकी एक रखेल रहती है। पैर कोलतारकी फिसलनी सड़क पर आकर बहुत धमक पैदा करते हैं। पहले यह शायत अपने होटलमें रुककर शराब पिएगा। घंटा पौन घंटा रिक्शा होटलके बाहर खड़ा रहेगा। फिर बालूरगंज पहुँचकर लाल कोठीके बाहर घंटा दो घंटा रुकना पड़ेगा। आधी रातको कहीं यह वापस लौटकर आयगा। कालू आज रातको ज़रूर दाँत कटकटा कर मर जायगा।

अपने पैरोंकी धमककी आवाज़ भी कभी-कभी अच्छी लगती है।

थप् थप् थप् थप् थप् थप् । हवासे हिलकर दयारके गुच्छे बीच-बीचमें बूँदे बरसा देते हैं । आजकी हवा बहुत ज़ालिम है...

हो—ओ ! पैर उल्टा पड़ जानेसे सारीकी सारी नाड़ियाँ खिंच गईं । ह-हा ! एड़ी एक क़दम भी सीधी नहीं धरी जाती । अभी इस होटलसे काफ़ी दूर जाना है । पंजेके बल उतनी दूर तक कैसे जाया जा सकता है ? मगर...

"तेज चलाओ !"

'अच्छा सा'ब !"

मनीजर सा'ब को शायत नशेकी टोट आ गयी है । इस समय एड़ी लगाकर भागते चलना ही ठीक है । भागते-भागते पैर अपने आप ठीक हो जायगा । अभी चार मील दौड़ना है, ऐसे पैर दबाकर कैसे दौड़ा जा सकता हैं ?

कालूको खाँसी उठ रही है । दौड़ते-दौड़ते उसकी ज़बान बाहरको निकल आती है । बूँदें फिर पड़ने लगी हैं...

नीचेकी ख़ाली सड़क पर जगुआ फागन और हीरा अपना ख़ाली रिक्शा लेकर आ रहे है । ये लोग शायद घर वापस जा रहे है । जगुआ को इस वक़्त क्या गानेकी मस्ती सूझी है ?

कियां बोलदा ऽऽ **मेरी जान भाबी** ऽऽ **कुक्कू कियां बोलदा** ऽऽऽ ?

ओ ऽऽऽऽ, **कियाँ बोलदा** ऽ...."

"ए और तेज़ चलाओ ।"

"अच्छा सा'ब !"

कोलतारकी सड़क पर पैर बहुत ज़ोरसे धमक पैदा कर रहे हैं—थप् थप् थप् थप् थप् थप्...

•

छोटी-सी चीज़

यह नन्हें यशवीरके जीवनमें एक ऐतिहासिक परिवर्तन था कि उसे समतल नागरिक वातावरणसे छः हज़ार फ़ुट ऊँचे पहाड़ पर ले आया गया, और घरके समरस जीवनसे निकालकर इंग्लिश पब्लिक स्कूलके खुले और अपरिचित जीवनमें छोड़ दिया गया।

स्कूलमें देखने और सीखनेकी कई नयी चीज़ें थीं। पहली चीज़ जो उसने सीखी, वह थी हर काले गाऊनवाले व्यक्तिको देखकर हाथ पीठ-पीछे करके कहना, 'गुड आफ़्टरनून, सर।' जब उसने ये शब्द ठीकसे ज़बानपर चढ़ा लिये तब उसे लगा कि जो उसने सीखा है, वह ग़लत है, क्योंकि और लड़के अब 'गुड आफ़्टरनून, सर' नहीं 'गुड ईवनिंग, सर' कह रहे थे। उसने अपने आपको सुधारा और अब उस नये वाक्यको कहनेका अभ्यास करने लगा।

शब्द उसने अच्छी तरह रट लिये। रातको हाऊस-मास्टर मिस्टर बर्टन ने उसके पलंगके पास आकर जब उसे थपथपाया तो अपनी सद्यः-ग्राहिणी प्रतिभाका परिचय देनेके लिए उसने बड़े उत्साहके साथ उनसे कहा, "गुड ईवनिंग, सर!"

कमरेके और लड़के इसपर हँस दिये। यशवीरने महसूस किया कि उसने ग़लत चीज़ सीख ली है। यह प्रकट करनेके लिए कि उसे ठीक चीज़ भी आती है, उसने आत्म-संशोधनके रूपमें फिर कहा, "गुड आफ़्टरनून, सर"

लड़के पुनः हँस दिये तो यशवीर अपनी अल्पज्ञताकी अनुभूतिसे लज्जित हो गया और अपना सिर-मुँह उसने कम्बलमें ढाँप लिया।

सबेरे उठकर उसने निश्चय किया कि वह पूरी तरह जाने बिना कोई बात मुँहसे नहीं निकालेगा। खान-पानके विषयमें भी उसके हृदयमें कई तरहके सन्देह थे। खानेकी मेज़के पास खड़े होकर एक मास्टरके कहे

हुए कुछ शब्द सुनना, फिर 'आमेन' कहना और फिर खाने बैठना, यह सब कुछ उसने रातको देखा था और उसे बहुत विचित्र लगा था। प्लेटके तीन ओर चम्मच काँटा और छुरी रखनेका रहस्य भी उसकी समझमें नहीं आया था। चावल तो उसने चम्मचसे खा लिये थे, पर शेष दोनों चीज़ोंका कोई उपयोग वह कल्पनामें नहीं ला सका था। सबेरे ब्रेकफ़ास्टके समय भी जब उसने तीनों चीज़ें उसी तरह रखी हुई देखीं, तो वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वे शायद प्लेटको उतनी सीमाके अन्दर रखनका संकेत देनेके लिए हैं। अन्यथा दूध और दलियेके साथ उन चीज़ोंका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध उसकी ज्ञान-शक्तिके लिए रहस्य ही था।

ब्रेकफ़ास्टके समय उसने अपना बिस्कुटोंका वह डिब्बा खोला जो उसकी ममीने उसे घरसे चलते समय दिया था। डिब्बा खोलकर उसने बिस्कुट निकाले, और पतले काग़ज़की तह समेत डिब्बेको पूर्ववत् करके, एक बिस्कुट मुँहमें डालनेके लिए उठाया। उसी समय उसके साथवाले लड़केने अपने जैमके डिब्बेमें से चम्मच भर जैम निकालकर उसके बिस्कुटपर लगा दिया और कहा, "इसके साथ खाओ।"

कुछ संशयके साथ यशवीरने उस लाल-लाल पदार्थको देखा। फिर उसने अपना दूसरा बिस्कुट तश्तरीमें से उठाकर उस लड़केकी ओर बढ़ा दिया और कहा, "लो, तुम मेरा बिस्कुट ले लो।"

"नहीं, मुझे नहीं चाहिए," उस लड़केने उपेक्षाके साथ कहा और स्लाइसके साथ जैम लगाकर खाता रहा। यशवीरको क्षोभ हुआ कि क्यों उसने उसे अपनी चीज़ दे दी है, और अब उसकी चीज़ नहीं लेता। उसने बिस्कुट उठाकर ज़बर्दस्ती उस लड़केकी प्लेटमें रख दिया।

"मुझे नहीं चाहिए," उस लड़केने फिर कहा।

"तुमने यह क्यों दिया था?" यशवीरने प्रतिरोध-भरे स्वरमें कहा और अपनी प्लेट ज़रा सरका ली, जिससे वह बिस्कुट लौटाकर उसमें न रख दे।

उस लड़केने अब कुछ नहीं कहा। अपना स्लाइस समाप्त करके वह जैमका डब्बा लिये हुए उठा, और दूसरी टेबलके एक बड़े लड़केके पास जाकर उसे जैम देने लगा। यशवीरके हृदयमें स्पर्धा जाग्रत हुई। क्या जैम बिस्कुटोसे अधिक रसनीय है? उसने अपना बिस्कुटोंका डिब्बा उठाया, और उसी बड़े लड़केके पास जाकर बोला, "एक बिस्कुट ले लो।"

"मुझे नहीं चाहिए," उस लड़केने भी उपेक्षाके साथ कहा।

"नही, एक ले लो," यशवीरने आग्रह किया, क्योंकि बिना बिस्कुट दिये लौट जानेमें उसकी पराजय थी।

उस लड़केने डिब्बेमें हाथ डालनेसे पहले डिब्बेका पतला काग़ज आधा फाड़ दिया। उसकी यह मर्म-विदारक चेष्टा यशवीरने सही। फिर लड़केने हाथ डालकर डिब्बेके सारे अस्तित्वको हिला दिया। जब उसका हाथ बाहर निकला तो उसमें एककी बजाय पाँच-छः बिस्कुट थे। अपने बिस्कुटों के साथ यह बलात्कार यशवीरसे नही देखा गया। उसने झटपट उस लड़के का हाथ पकड़ लिया और रोष तथा रुदन-मिश्रित स्वर में कहा, "इतने नहीं, एक।"

"एक?" उस लड़केने विचित्र भावके साथ पूछा।

यशवीरने सिरके कम्पनसे अनुमति देनेका भी काम लिया और रुलाई रोकने का भी।

लड़केने अपने हाथको एक बार ज़रा-सा भींचा और सारे बिस्कुट चूरा करके तिरस्कारके साथ उसके डिब्बेमें डाल दिये और कहा, "जाओ।"

ब्रेकफ़ास्टके बाद कमरेमें आकर यशवीर खिड़कीसे बाहरकी ओर देखता हुआ देरतक आँसुओंको रोकनेकी चेष्टा करता रहा। कलसे अब तक एक भी घटना ऐसी नहीं हुई थी, जिसमें उसे ठीक समय पर ठीक बात कर पानेका सन्तोष होता। जिस समय इन्सपेक्शनकी घण्टी बजी, वह अभी तैयार नहीं हुआ था। जल्दी-जल्दी उसने कपड़े ठीक किये और टाईके साथ संघर्ष करने लगा। टाईकी गाँठ तो ठीक हो गयी पर नीचेका सिरा ऊपर

के सिरेसे दुगुना बड़ा निकल आया। सहसा उसका ध्यान पैरोंकी ओर चला गया। मोज़ेका उसने अभी एक ही पैर पहना था और जूतेके तो दोनों ही पैर पहनने रहते थे। टाईको छोड़ कर वह मोजेकी ओर झुका। उसी समय मिस्टर बर्टन इंस्पेक्शन करते हुए पास आ गये और वह तुरन्त उसी तरह हाथ पीठ-पीछे कर के, (जैसा कि उसे समझाया गया था) इंस्पेक्शनके लिए तैयार हो गया। पतलूनके बटनोंकी ओर उसका ध्यान अकड़ कर खड़े होने के बाद गया। इससे वह इतना अव्यवस्थित हो गया कि मिस्टर बर्टन से 'गुड मॉर्निंग सर' कहना भी भूल गया, हालाँकि ये शब्द उसने निश्चयके साथ सीखे थे, और सन्तोष कर लिया था कि दिनके बारह बजे तक उनका प्रयोग किया जा सकता है।

मिस्टर बर्टनने रुककर उसे सिरसे पाँव तक देखा और यह कहकर कि शामको पाँच बजे मेरी स्टडीमें आना, आगे चले गये। एक दूसरे लड़केसे वे कह गये कि वह उसे उनका स्टडीका कमरा दिखला दे।

जब उस लड़केने संकेतसे यशवीरको उनका स्टडीका कमरा दिखलाया तो उसने आशंकित स्वरमें पूछा, "वहाँ क्या होता है?"

"मिस्टर बर्टनसे स्टिक मिलती है," उस लड़केने मुसकरा कर उत्तर दिया।

कुछ मिलता है, इस विचारसे यशवीरको थोड़ा सन्तोष हुआ। क्या मिलता है, इस जिज्ञासाकी पूर्तिके लिए उसने पूछा, "स्टिक क्या होती है?"

"बेंतकी छड़ी।"

यशवीरको अपने पिताकी बेंतकी छड़ी याद आई, जिससे खेलनेका उसे बहुत शौक़ हुआ करता था। उसने वैसी ही खेलनेकी वस्तुकी कल्पना करके कहा, "हर लड़केको एक मिलती है?"

उस लड़केने जब उस बातकी व्याख्या कर दी कि किन लड़कोंको 'स्टिक' मिलती है, और किस तरह दोहरे होकर नितम्बों पर उसकी मार लेनी होती है, तो यशवीरके सारे शरीरमें एक कँपकँपी दौड़ गयी।

बेंतकी छड़ी खेलनेके लिए ही नहीं, मार खानेके लिए भी होती है, यह सामान्य ज्ञान उसे पहली बार प्राप्त हुआ ।

"फिर क्या होता है ?" उसने पूरी जानकारी लेनेके लिए पूछा ।

"कुछ नहीं । बस 'थैंक यू, सर' कहकर लौट आते हैं ।"

थैंक यू, सर—यशवीर इन नये शब्दोंको याद करने लगा । नितम्बों पर बेंत खानेकी बात पीछे चली गयी और जिह्वा पर तथा मस्तिष्कमें बार-बार वही शब्द उभरने लगे—थैंक यू, सर ! थैंक यू, सर ! थैंक यू, सर !

डिंग डांग, डिंग डांग, गिरजेकी घण्टियाँ बजने लगी थीं । लड़कोंकी पंक्तिमें चलता हुआ वह यह उत्सुकता लिये कि गिरजेका ईश्वर कैसा होगा, गिरजेके अन्दर चला गया ।

गिरजेमें सामूहिक प्रार्थना आरम्भ हुई ।

यशवीरको प्रार्थनाके शब्द नहीं आते थे । उसकी इच्छा हो रही थी कि वह शब्दोंकी लयके साथ-साथ टाँगें पीछेकी ओर हिलाये, परन्तु यह सोचकर कि कहीं ऐसा करनेसे ईश्वर नाराज न हो जाय, वह किसी तरह अपनी टाँगोंको वशमें किये रहा ।

आसपासके लड़के निश्चल भावसे प्रार्थना कर रहे थे । सबने आँखोंके आगे हाथ रख रखे थे । फिर भी, न जाने कैसे, सब-के-सब शब्दोंको एक साथ मिलाकर बोल लेते थे । न किसीका कोई शब्द दूसरोंसे पीछे रहता था, न आगे जाता था । यशवीर आँखों पर हाथ रखे हुए यह भी सोच रहा था कि इस तरह हाथ रखनेका क्या अर्थ है ? क्या ईश्वर खुली आँखोंसे की गयी प्रार्थनाको नहीं सुनता ? और ईश्वर है कहाँ ? सामने लगी हुई मोमबत्तियोंके बीचमें, या काले चोग़ेवाले पादरीके अन्दर ? उसने निश्चय करनेके लिए आँखोंसे थोड़ा हाथ हटाया । फिर यह सोचकर कि कहीं ईश्वर उसे ऐसा करते देख न ले, उसने आँखें पूर्ववत् बन्द कर लीं ।

दोपहरके खानेके समय मिसें और मास्टर भी उनके साथ ही खाना खाने के लिए बैठे । इस समय उसने लक्षित किया कि सब लड़के रोटी छुरीके साथ

काटकर खा रहे हैं और तरकारी काँटेके साथ मुँहमें डाल रहे हैं। यह देखकर खाना खाना उसे एक समस्या लगने लगा। उसने दोनों चीज़ोंको हाथोंमें ले तो लिया, पर इसका कोई समाधान नहीं हो सका कि किसका किस कोणसे प्रयोग किया जाय। किसी तरह छुरीका तीखा सिरा रोटीके शिरोभाग पर लाकर उसने नीचेको दबाया तो रोटी नहीं कटी। फिर उसने काँटेको तरकारीमें डालकर दो-तीन दिशाओंसे मटर निकालनेकी चेष्टा की, पर मटरका एक भी दाना उसके साथ ऊपर नहीं आया। यशवीरने अबके छुरीको रोटीपर रखकर पूरे ज़ोरसे दबाया। उधर काँटे वाले हाथने अनायास ही तरकारी वाली प्लेटपर जोर दे दिया। इधर रोटी वाली प्लेट उछली और उधर तरकारी वाली प्लेट औंधी होकर उसके कपड़ोंपर आ रही। पल भरके लिए सारे हालमें छुरियों और काँटोंका चलना रुक गया। निःस्तब्धताके एक हल्के-से विरामके बाद मुस्कराहटोंके साथ खानेकी क्रिया फिरसे चालू हो गयी। यशवीरने देखा कि दूरसे मिस्टर बर्टन स्थिर आँखोंसे उसे ताक रहे हैं। उनकी ओर देखते ही, उसकी जिह्वा, एक स्वाभाविक क्रमसे अपने आप दोहराने लगी, "थैंक यू, सर! थैंक यू, सर! थैंक यू, सर!"

एक लड़का बाहर ले जाकर उसके कपड़े धुला लाया। लौटकर वह, जितनी भूख थी उसका एक तिहाई भी नहीं खा पाया। उसके मस्तिष्कमें यह बात जम गई थी कि अब तक लगातार उससे भूलें ही होती आ रही हैं, अतः सायंकाल 'स्टिक' मिलनेके समय शुद्ध रूपसे 'थैंक यू, सर' कहनेमें उससे तनिक भी भूल नहीं होनी चाहिए।

पाँच बजे। यशवीरने दोहरा-दोहरा कर अपनी परीक्षा कर ली कि वाक्य उसे ठीक याद हो गया है। जब उसने मिस्टर बर्टनकी स्टडीका दरवाज़ा खटखटाया और उन्होंने दरवाज़ा खोल दिया तो वह मन-ही-मन पूर्णतया तैयार था कि झुकने और बेंत खानेकी प्रक्रिया शीघ्रतासे समाप्त हो तो वह झटपट कहे, 'थैंक यू, सर!'

परन्तु मिस्टर बर्टनने न तो उसे झुकनेके लिए ही कहा और न स्टिक ही उठायी। केवल इतना पूछकर कि उसे स्कूल कैसा लग रहा है, उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरा, और दो टाफ़ियाँ उसे देकर कहा, "जा, छोटी-सी चीज़, उदास मत होना।"

यशवीरने एक बार कोनेमें पड़ी हुई स्टिककी ओर देखा, और एक बार मिस्टर बर्टनकी ओर और फिर बाहर चला आया। उसे हार्दिक खेद हो रहा था कि उसे 'थैंक यू, सर' कहने का अवसर नही मिला। उसे लग रहा था कि दूसरा अवसर आने तक वह अवश्य इन शब्दोंको भूल जायगा।

सहसा उसने रुककर मिस्टर बर्टनकी स्टडीकी ओर मुँह किया और ज़ोर से कहा, "थैंक यू, सर!" और अपने कमरेकी ओर भाग आया। अपराध करनेका अनुभव तो उसके हृदयमें था, पर यह विश्वास भी था कि मिस्टर बर्टन उसे फिर बुलायेंगे तो दो टाफ़ियाँ अवश्य देंगे।

सीमाएँ

इतना बड़ा घर था, खाने पहनने और हर तरहकी सुविधा थी, फिर भी उमाके जीवनमें एक बहुत बड़ा अभाव था जिसे कोई चीज़ नहीं भर सकती थी ।

उसे लगता था कि वह देखनेमें सुन्दर नहीं है । वह जब भी शीशेके सामने खड़ी होती तो उसके मनमें झुँझलाहट भर आती । उसका मन होता कि उसकी नाक लंबी हो, गाल ज़रा हल्के हों, ठोड़ी आगेकी ओर निकली हो और आँखें थोड़ा और बड़ी हों । परन्तु अब यह परिवर्तन कैसे होता ? उसे लगता कि उसके प्राण एक ग़लत शरीरमें फँस गये हैं जिससे निस्तारका कोई चारा नहीं, और वह खीझकर शीशेके सामनेसे हट जाती ।

उसकी माँ हर रोज़ गीताका पाठ करती थी । वह बैठकर गीता सुना करती थी । कभी माँ कथा सुनने जाती तो वह साथ चली जाती थी । रोज़-रोज़ पण्डितकी एक ही तरहकी कथा होती थी--'नाना प्रकार कर करके नारद जी कहते भये हे राजन्'...पण्डित जो कुछ सुनाता था, उसमें उसकी ज़रा भी रुचि नही रहती थी । उसकी माँ कथा सुनते-सुनते ऊँघने लगती थी । वह दरी पर बिखरे हुए फूलोंको हाथोंमें लेकर मसलती रहती थी ।

घरमें माँने ठाकुरजीकी मूर्ति रख रखी थी जिसकी दोनों समय आरती होती थी । उसके पिता रातको रोटी खानेके बाद चौरासी वैष्णवोंकी वार्तामेंसे कोई वार्ता सुनाया करते थे । वार्ताके अतिरिक्त जो चर्चा होती, उसमें सतियोंके चरित्र और दाल आटेका हिसाब, निराकारकी महिमा और सोने-चाँदीके भाव, सभी तरहके विषय आ जाते । वह पिता द्वारा दी गयी जानकारी पर कई बार आश्चर्य प्रकट करती, पर उस आश्चर्यमें उत्साह नहीं होता ।

उसे मिडल पास किये चार साल हो गये थे। तबसे अब तक वह उस सन्धि-कालमेंसे ही गुज़र रही थी जब सिवा विवाहकी प्रतीक्षा करनेके जीवन-का और कोई ध्येय नहीं होता। माता-पिता जिस दिन भी विवाह कर दें, उस दिन उसे पत्नी बन कर दूसरे घरमें चली जाना था। यह महीने दो महीनेमें भी संभव हो सकता था, और दो तीन साल और भी प्रतीक्षामें निकल जा सकते थे।

उमा कुछ कर नहीं रही थी, फिर भी अपनेमें व्यस्त थी। बैठी थी, लेट गयी। फिर उठकर कमरेमें टहलने लगी। फिर खिड़कीके पास खड़ी होकर गलीकी ओर देखने लगी और काफ़ी देर तक देखती रही।

सबेरे रक्षा उसे सरलाके ब्याहका बुलावा दे गयी थी। वह कह गयी थी कि वह साढ़े पाँच बजे तैयार रहे, वह उसे आकर ले जायगी। पहले रक्षाने ही उसे बतलाया था कि सरलाका किसी लड़केसे प्रेम चल रहा है जो उसे चिट्ठियोंमें कविता लिखकर भेजता है और जलती दोपहरमें कालेज-के गेटके पास उसकी प्रतीक्षामें खड़ा रहता है। आज वह प्रेम फलीभूत होने जा रहा था।

प्रेम....यह शब्द उसे गुदगुदा देता था। राधा और कृष्णके प्रेमकी चर्चा तो रोज़ ही घरमें हुआ करती थी। परन्तु उस दिव्य और अलौकिक प्रेमके बखानसे वह विभोर नहीं होती थी। परन्तु यह प्रेम....उसकी सहेली का किसी लड़केसे प्रेम....यह और चीज़ थी। इस प्रेमकी चर्चा होने पर मलमलके जामे-सा हल्का आवरण स्नायुओंको छू लेता था।

"उम्मी!" माँ खिड़कीमें उसके पास आकर खड़ी हो गयी।

उमाने ज़रा चौंककर माँकी ओर देखा।

"तुझे अभी तैयार नहीं होना?" माँने पूछा।

"अभी तैयार हो जाऊँगी, ऐसी क्या जल्दी है?" और उमाकी आँखें गलीकी ओर ही लगी रहीं।

"जाना है तो अब कपड़े-अपड़े बदल ले," माँने कहा, "बता साड़ी निकाल दूँ कि सूट ?"

"जो चाहे, निकाल दो...." उमा अन्यमनस्क भावसे बोली ।

"तेरी अपनी कोई मर्ज़ी नहीं ?"

"उसमें मर्ज़ीका क्या है ? जो निकाल दोगी पहन लूँगी ।"

उसे अपने शरीरपर साड़ी और सूट दोनोंमें से कोई चीज़ अच्छी नहीं लगती थी । क़ीमतीसे क़ीमती कपड़े उसके अंगोंको छूकर जैसे मुरझा जाते थे । रक्षा सबेरे साधारण खादीके कपड़े पहन कर आयी थी, फिर भी बहुत सुन्दर लग रही थी । उमा खिड़कीसे हटकर शीशेके सामने चली गयी । मनमें फिर वही झुँझलाहट उठी । आज वह इतने लोगोंके बीच जाकर कैसी लगेगी ? माँने सुबह मना कर दिया होता तो कितना अच्छा था ? अब भी यदि वह रक्षासे ज्वरका या सिर दर्दका बहाना कर दे....?

वह अपने मनकी दुर्बलताको तरह-तरहसे सहारा दे रही थी । कभी चाहती कि रक्षा उसे लेने आना ही भूल जाय । कभी सोचती कि शायद यह सपना ही हो और आँख खुलने पर उसे लगे कि वह यूँ ही डर रही थी । मगर सपना होता तो कहींसे टूटता या बदलता । सुबहसे अब तक इतना एकतार सपना कैसे हो सकता था ?

माँने सफ़ेद साटिनका सूट लाकर उसके हाथमें दे दिया । उमाने उसे शरीरसे लगाकर देखा । उसे अच्छा नहीं लगा । मगर उसका नया सूट वही था । उसने सोचा कि एक बार पहनकर देख ले, पहननेमें क्या हर्ज है ?

सूटकी फ़िटिंग बिल्कुल ठीक थी । उसे लगा कि उससे उसके गोंका भद्दापन और व्यक्त हो आया है । यदि उसकी कमर कुछ पतली और नीचे-का हिस्सा ज़रा भारी होता तो ठीक था । यदि उसकी होशमें ही उसका पुनर्जन्म हो जाय और उसे रक्षा जैसा शरीर मिले, तो वह इस सूटमें कितनी अच्छी लगे ?

माँ वह लकड़ीका डिब्बा ले आयी जो कभी उसकी फूफीने उपहारमें दिया था। उसमें पाउडर, क्रीम, लिपस्टिक और नेलपालिश, कितनी ही चीज़ें थीं। उसने उन्हें कई-बार सूंघा तो था पर अपने शरीर पर उनके प्रयोगकी कल्पना नहीं की थी। उसने माँकी ओर देखा। माँ मुसकरा रही थी।

"यह किसके लिए लायी हो ?" उमाने पूछा।

"तेरे लिए और किसके लिए ?" माँ बोली, "ब्याह वाले घर नहीं जायगी ?"

"तो उसके लिए इस सबकी क्या ज़रूरत है ?"

"वैसे जाना लोगोंमें बुरा लगेगा। घड़ी दो घड़ीकी ही तो बात है।"

"लालाजीने देख लिया तो.... ?"

"वे देरसे घर आयँगे। तू लौटकर साबुनसे मुंह धो लेना।"

"परन्तु.... !"

उसके मनका 'परन्तु' नहीं निकला। पर वह मना भी नही कर सकी। उसकी इच्छा न हो, ऐसी बात नहीं थी, पर मनमें आशंका भी थी। वह उन चीज़ोंको अनिश्चित-सी देखती रही। माँ दूसरे कमरेमें चली गयी।

लिपस्टिक उसने होंठोंके पास रखकर देखी। फिर मन हुआ कि हल्का-सा रंग चढ़ाकर देख ले। चाहेगी तो पल भरमें तौलियेसे पोंछ देगी।

ज्यों-ज्यों ओंठोंका रंग बदलने लगा, उसके मनकी उत्सुकता बढ़ने लगी। तौलियेसे ओंठ छिपाये हुए वह जाकर खिड़कीके किवाड़ बंद कर आयी। फिर शीशेके सामने आकर वह तौलियेसे ओंठोंको रगड़ने लगी। उससे रंग कुछ फीका तो हो गया पर पूरी तरह नहीं उतरा। फिर तौलिया रखकर उसने पाउडरकी डिबिया उठा ली। मनने प्रेरणा दी कि तौलिया है, पानी है, एक मिनिटमें चेहरा साफ़ हो सकता है, और वह पफ़से चेहरे पर पाउडर लगाने लगी।

पफ़ रखकर जब उसने चेहरेको हाथसे मलना आरम्भ किया तभी सीढ़ियों पर पैरोंकी खट्-खट् सुनायी दी। इससे पहले कि वह तौलियेमें

मुँह छिपा पाती, रक्षा दरवाज़ा खोलकर कमरेमें आ गयी। उमाके लिए अपना आप भारी हो गया।

"तैयार हो गयी, परी रानी ?" रक्षाने मुसकरा कर पूछा।

परी रानी शब्द उमाको खटक गया। उसे लगा कि उस शब्दमें चुभती हुई चोट है।

"साढ़े पाँच बज गये ?" उसने कुण्ठित स्वरमें पूछा।

"अभी दस बारह मिनिट बाक़ी है," रक्षाने कहा।

"मैं समझ रही थी अभी पाँच भी नहीं बजे," उमाने किसी तरह मुसकरा कर कहा। उसकी आँखें रक्षाके शरीर पर स्थिर हो रही थीं। आसमानी साड़ीके साथ हीरेके टाप्स और सोनेकी चूड़ियाँ पहन कर रक्षा बहुत सुन्दर लग रही थी।

माँने अन्दरसे पुकारा तो उमाको जैसे वहाँसे हटनेका बहाना मिल गया। अन्दर गयी तो माँ वह मखमली डिबिया लिये खड़ी थी जिसमें सोनेकी ज़ंजीर रखी रहती थी। वह ज़ंजीर माँके ब्याहमें आयी थी और उमाके ब्याहमें ी जानेके लिए संदूक़में संभालकर रखी हुई थी। माँने ज़ंजीर उसके गलेमें पहना दी तो उमाको बहुत अजीब लगने लगा। रक्षा उधर आवाज़ दे रही थी इस लिए वह माँके साथ बाहर कमरेमें आ गयी। उसके बाहर आते ही रक्षाने चलनेकी जल्दी मचा दी।

जब वह चलने लगी तो माँने पीछे से कहा, "रातको मन्दिरमें उत्सव भी है। हो सके तो आती हुई दर्शन करती आना।"

वह सीढ़ियोंसे उतर कर रक्षाके साथ गलीमें चलने लगी।

ब्याह वाले घरमें पहुँच कर रक्षा बहुत जल्दी इधर-उधर लोगोंमें उलझ गई। वह यहाँसे वहाँ जाती, वहाँसे उसके पास और उसके पाससे और किसीके पास। उमा सोफ़ेके एक कोनेमें सिमट कर बैठ रही। जब उसकी रक्षासे आँख मिल जाती तो रक्षा मुसकरा कर उसे उत्साहित कर देती। जब रक्षा दूर चली जाती तो उमा बहुत अकेली पड़ने लगती।

वह बत्तियोंसे जगमगाता हुआ घर उसके लिए बहुत पराया था। वहाँ फैली हुई महक अपनी दीवारोंकी गन्धसे बहुत भिन्न थी। ख़ामोश अकेलेपनके स्थान पर चारों ओर खिलखिलाता हुआ शोर सुनायी दे रहा था। वह एक प्रवाह था जिसमें निरन्तर लहरें उठ रही थीं। पर वह लहरोंमें लहर नहीं, एक तिनकेकी तरह थी—अकेली और एक ओरको हटी हुई।

रक्षा कुछ और लड़कियोंको लिये हुए बाहरसे आयी और उसने उन्हें उसका परिचय दिया, "यह हमारी उमा रानी है, तुम लोगों की तरह चंट नहीं है, बहुत सीधी लड़की है।"

उमाको इस तरह अपना परिचय दिया जाना अच्छा नहीं लगा, फिर भी वह मुसकरा दी। रक्षा दूसरी लड़कियोंका परिचय कराने लगी, "यह कान्ता है, इण्टरमें पढ़ती है। अभी-अभी इसने कॉलेजके नाटकमें जूलिएटका अभिनय किया था, बहुत अच्छा अभिनय रहा। ...यह कंचन है, आजकल कला भवन में नृत्य सीख रही है। ...और मनोरमा...यह कॉलेजके बैडमिंटन क्लबकी सेक्रेटरी है, बैडमिंटनमें कॉलेजके किसी भी लड़केको मात दे सकती है....

परिचय पा कर उमा अपने को उनसे और भी दूर अनुभव करने लगी। उन सबके पास करनेके लिए अपनी बातें थीं। 'वह' 'उस दिन', 'वह बात' आदि संकेतोंसे वे बरबस हँस देती थीं। उमाके विचार कभी फ़रश पर अटक जाते, कभी छतसे टकराने लगते और कभी सफ़ेद सूट पर आ कर सिमट जाते।

रक्षा कान्ताको एक फ़ोटो दिखा रही थी। और कह रही थी, कि इस लड़केसे ललिताकी शादी हो रही है।

"अच्छी लाटरी है!" कान्ता तसवीर हाथमें लेकर बोली, "एक दिनकी भी जान-पहचान नहीं, और कलको ये पतिदेव होगें और ललिताजी 'हमारे वे' कहकर इनकी बात करेंगी—धन्य पतिदेव!"

कान्ताकी बात पर और सबके साथ उमा भी हँस दी। पर वह बेमतलब की हँसी थी, उसे हँसनेके लिए आन्तरिक गुदगुदीका ज़रा भी अनुभव नहीं हुआ था। उसके स्नायु जैसे जकड़ गये थे। खुलना चाहते थे, लेकिन खुल नहीं पा रहे थे।

बातमे से बात निकल रही थी। कभी कोई बात स्पष्ट कही जाती और कभी सांकेतिक भाषामे। सहसा बात बीचमे ही छोड़कर रक्षा एक नवयुवकको लक्षित करके बोली, "आइए, भाई साहब! लाये है आप हमारी चीज़?"

"भई, माफ़ कर दो," नवयुवक पास आता हुआ बोला, "तुम्हारी चीज़ मुझसे गुम हो गयी।"

"हाँ, गुम हो गयी! साथ आप नही गुम हो गये?" रक्षा धृष्टताके साथ बोली।

"अपना भी क्या पता है?" नवयुवक ने कहा, "इंसानको गुम होते देर लगती है?"

नवयुवक लंबा और दुबला पतला था और देखनेमें काफ़ी अच्छा लग रहा था। उमाने एक नज़र देखकर आँखें हटा ली।

"चलो उधर सरला बुला रही है" नवयुवकने फिर रक्षासे कहा।

"उससे कहो, मैं अभी आती हूँ," रक्षा बोली।

"चलो भी, अभी आती हूँ।" कहकर उसने रक्षाका हाथ पकड़कर खीचा। रक्षा उसके साथ चली गयी। कान्ता कंचनको बताने लगी कि उस लड़केका नाम मोहन है और वह सरलाका चचेरा भाई है। एम्. ए. फ़ाइनलमें पढ़ रहा है। उमाने इससे अधिक कुछ सुननेकी आशा की। पर कान्ता वह बात छोड़कर मनोके फ़ीतेकी प्रशंसा करने लगी।

मनोका फ़ीता बहुत सुन्दर था। उसके बालोंमें सोनेका क्लिप और नीले रंगके फूल भी बहुत अच्छे लग रहे थे। उसके ब्लाउज़का पारदर्शक कपड़ा बिजलीके प्रकाशमें किरणें छोड़ रहा था। कंचन मनोके कंधे पर

झुककर उसके कानमें कुछ फुसफुसाने लगी। उमाकी आँखें झट दूसरी ओरको हट गयी।

उसके सामने जो दो स्त्रियाँ बैठी थी, वे उसीकी ओर देखकर कोई बात कर रही थीं। उमाको लगा कि वे उसीकी बात कर रही हैं—शायद उसके कपड़ोंकी आलोचना कर रही हैं। उसने बाँहें समेट ली और हाथसे गलेकी जंजीरको सहलाने लगी।

"बाहर चल रही हो?" मनोने उससे पूछा।

"रक्षा किधर गयी है?" यह पूछकर उमा और संकुचित हो गयी।

"बाहर ही गयी है, अभी देखकर भेजती हूँ," कहकर मनो कंचन और कान्ताके साथ उठ खड़ी हुई और वे सब बाहर चली गयी।

उमा फिर बिल्कुल अकेली पड़ गयी तो उसके मनका बोझ बढ़ने लगा। वहाँ इतने अपरिचित लोगोंकी उपस्थिति, चहलपहल और सजावट, सब कुछ उसे बेगाना लग रहा था। यदि सहसा उसे सुनसान अँधेरे जंगलमें पहुँचा दिया जाता, जहाँ चारों ओर बिल्कुल नीरवता होती तो उसे निश्चय ही अबसे अच्छा लगता। परन्तु वहाँ उस चुलबुलाहट, छेड़छाड़ और दौड़-धूपमें उसकी तबीयत उखड़ रही थी....।

सहसा कमरा क़हक़होंसे गूँज उठा। उमा चौक गयी। कोई ऐसी बात हुई थी जिसपर सब लोग हँस रहे थे। उसने सोचा कि वह भी हँस दे परन्तु वह चुप रही कि हो सकता है उसीके बारेमें कोई बात हुई हो...। लेकिन जब हँसीका स्वर बैठ गया तो उसे अपने चुप रहनेके लिए खेद हुआ क्योंकि उसकी चुप्पी सबने लक्षित की थी। वह पश्चात्तापसे भर गयी।

बाजोंका स्वर दूरसे पास आ रहा था, इससे लोगोंने अनुमान लगाया कि बारात आ रही है। कमरेकी हलचल बढ़ गयी। उमाको उस समय बहुत ही व्यर्थ-सा प्रतीत होने लगा। उसके कानोंमें बाजेका स्वर गूँज रहा था और आसपास कुछ वाक्योंके टुकड़े मँडरा रहे थे।

—आओ बाहर ।
—माधवी, ओ माधवी !
—हाय, मेरा लाल रूमाल !
—रोती है तो रोने दे ।
—नीना रानी, ले बिस्कुट ।
—मौली मिल गयी, पण्डित जा ?
—देख, पीछे कितने लोग हैं ?
—रूई, फूल, धूप, मेवा ।
—मोहनलाल ! मोहनलाल ।
—देखा, कैसा है ?
—कुछ लंबा लगता है ।
—आ मिट्ठू,आ बेटा ।
—जान ले ले तू बाबूजी की !

एक एक करके सब लोग कमरेसे बाहर चले गये । कुछ अपने आप आग्रहसे चले गये और कुछको दूसरे आ कर अनुरोधके साथ ले गये । केवल उमा अपने अकेलेपनमें घिरी हुई वहाँ बैठी रह गयी ।

पहले क्षण तो उसे अकेली रह जानेमें अच्छा लगा । दूसरे क्षण उपेक्षित होनेकी टीसका अनुभव हुआ । फिर आत्मीयता दीप्त हुई कि उसे भी बाहर जाना चाहिए । परन्तु अगले क्षण वह इस अनुभूतिसे मुरझा गयी कि बाहर जा कर भी वह अकेली होगी... उस भीड़में उसके होने-न-होनेसे कोई अन्तर नहीं पड़ता ।

बैंडका स्वर बहुत पास आ गया था और बाहर कोलाहल बढ़ रहा था । अंदर उमाके लिए समयके क्षण लम्बे होते जा रहे थे और उसके हृदयकी धड़कन मद्धम पड़ रही थी । तभी अचानक रक्षा बाहरसे वहाँ आ गयी ।

"क्यों रानी, रूठ गयी है क्या ?" रक्षाने आते ही पूछा ।

"नहीं, मैं..." उमाने सिरदर्दका बहाना करना चाहा, लेकिन उसकी बात पूरी होने से पहले ही रक्षाने उसका हाथ पकड़ कर उठा दिया।

"बाहर चल, यहाँ क्या बैठी है?" वह बोली, "बाहर अभी हम लोग दूल्हाके साथ एक तमाशा करने जा रही हैं।"

और कुछ कह सकनेसे पहले ही उमा बाहर भीड़में पहुँच गयी। वहाँ कंचन, मनो और कान्ता मिल गयीं। वे सब उसे साथ सरलाके कमरेमें ले गयीं। सरला दुलहिनके वेशमें बिल्कुल और ही लग रही थी। फूलदार जारजेटकी साड़ीके साथ मोतियोंके गहने उसकी गुलाब-सी त्वचा पर बहुत खिल रहे थे। सरला उस की ओर देखकर मुसकरायी तो वह उसके ओंठोंकी सलवटें देखती रह गयी। सरलाने साथ कुछ शब्द भी कहे, परन्तु वे शब्द कोलाहलमें उसे सुनायी नही दिये। वह उत्तरमें यूँही मुसकरा दी हालाँकि अपनी वह व्यर्थकी मुसकराहट उसके हृदयमें चुभ-सी गयी...

दो घंटे बाद जब रक्षा उसे उसके घरकी गलीके बाहर छोड़कर आगे चली गयी तब भी उमाके हृदयमें वह चुभता हुआ अनुभव उसी तरह था, जैसे कोई काँटा अन्दर टूट कर रह गया हो। वह अपनी स्थितिका निर्णय नहीं कर पा रही थी। एक तरफ़ जैसे रक्षा, सरला, कान्ता, कंचन और मनोरमा खिलखिलाकर हँस रही थीं। दूसरी तरफ़ वे दीवारें थीं, जिन में सटी हुई खिड़कीके पास सबेरे धूप आती थी और दोपहर ढलते ही अँधेरा होने लगता था और जिनके सायेमें पूर्णिमा और एकादशीके व्रत रखने होते थे। वह जैसे दोनों ओरसे दब रही थी और टूट रही थी।

गलीमें आकर उसने मन्दिरकी घंटियाँ सुनीं तो उसे माँकी बात याद हो आयी कि आज मन्दिरमें उत्सव है। उसके पैर अनायास मन्दिरकी सीढ़ियोंकी ओर बढ़ गये। वह अंदर पहुँचकर स्त्रियोंकी पंक्तिमें हाथ बाँधकर खड़ी हो गयी।

आरती समाप्त होनेपर स्तोत्र पाठ आरम्भ हुआ। उमा भी आँखें मूँदकर लयमें शब्दोंका अनुकरण करने लगी, **जय सीतावर वर सुन्दर, जय जग सुख दाता। जय जय जग सुखदाता....**

परन्तु मूँदी हुई आँखोंके आगे रक्षाका खिलखिलाता हुआ चेहरा आ गया, फिर मोहनकी बड़ी-बड़ी आँखें, और फिर एक एक के ब ः कितनी ही आकृतियाँ सामने आने लगी, व्यंग्यपूर्ण मु कराहटें, उपेक्षा-भरी भौंहें, सोफ़े का खाली कोना, जोर ज़ोरसे बजता हुआ बाजा...। उसने अपने आपको झटका दिया..। **दीनबंधु करुणामय, सब जगके त्राता!** ..फिर हिलता हुआ पर्दा, पर्देके पीछे बिजलियाँ, बिजलियोंके प्रकाशमें रक्षा, मोहन, सरला और दूल्हाके खिलखिलाते हुए चेहरे... ।

उमाने आँखें खोल ली। स्तोत्रका स्वर चारों ओर गूँज रहा था। बरसोंसे वह इस स्वरको सुनती आयी थी, लेकिन फिर भी आज उसे यह स्वर कुछ अपरिचित-सा लग रहा था। जैसे उसके अन्तरकी गहराईमें कहीं कुछ थोड़ा बदल गया था।

सहसा उसकी आँखें एक जगह टकराकर लौट आयीं। भीड़में एक नवयुवक उसकी ओर देख रहा था।

उमाके शरीरमें लहूका दबाव बढ़ गया। हृदयकी गति बहुत तेज़ हो गयी। उसकी आँखें केलेके खंभोंपर से हटकर सजी हुई सामग्रीपर से फिसलती हुई फिर वहीं टकरायीं। वह अब भी उसी तरह देख रहा था।

उमाके लिए पैरोंका संतुलन बनाये रखना कठिन हो गया। उसकी आँखें ठाकुरजीकी मूर्ति पर पड़ी और जल्दीसे हट गयी। उसके पाससे कुछ लोग चलने लगे तो वह भी साथ चल दी। पुजारीसे चरणामृत लेकर वह ड्योढ़ीकी ओर बढ़ी। सहसा भीड़में किसीका हाथ उससे छुआ। उमाने घूमकर देखा। वही दो आँखें थीं...काली डोरेदार आँखें।

स्तोत्रका स्वर मशीनके घरघर स्वर जैसा हो गया। आस-पासकी भीड़, पत्थरकी गोपियाँ, मिट्टीके आम और कपड़ेके तोते, हर चीज़ धुँधली

होने लगी। आकाश बोझिल हो गया और धरती समतल नहीं रही। दिशाएँ एक दूसरीमें मिलकर ओझल होने लगीं। प्रकाश रंग बदलने लगा। वह भीड़में कुछ यूँ हो गयी जैसे रुके हुए पानीमें अस्तव्यस्त हाथ-पैर मार रही हो। उसे केवल एक ज्ञान था कि एक हाथ उसे छू रहा है। यहाँ बाज़ूके पास, यहाँ कंधेके पास, यहाँ..... ।

वह बाहरसे आती हुई दो स्त्रियोंके साथ उलझ गयी। किसी तरह सँभलकर जब वह बाहर पहुँची तो उसे हवाका स्पर्श कुछ विचित्र-सा लगा। लहू जो तेजीके साथ नाड़ियोंमें सरसरा रहा था, वह अब कुछ ठंडा पड़ने लगा तो शरीरमें सिहरन भर गई। उसके कंधेके पास उस हाथका स्पर्श जैसे अभी तक सजीव था।

उसका मन हुआ कि वह जल्दीसे घर पहुँच जाय और एक बार खिलखिला कर हँस दे। वे असाधारण क्षण बिल्कुल नयी-सी अनुभूति छोड़ गये थे। यदि रक्षा उस समय उसके पास होती तो वह हंसती हुई उसके गलेमें बाहें डाल देती और उसे घसीटती हुई अपने साथ घर ले जाती।

उस स्पर्शको एक बार छू लेनेके लिए उमाका हाथ अपने कंधेके उसी भागकी ओर उठ गया। वह स्पर्श जैसे वहाँ अपनी निश्चित छाप छोड़ गया था।

अचानक उसका पैर लड़खड़ा गया और वह रुक गयी। उसका शरीर पसीनेसे भीग गया। अंधेरेमें गहरे-गहरे रंग फैल गये।

उस स्पर्शका आभास तो वहाँ था, पर सोनेकी ज़ंजीर गलेमें नहीं थी।

●

ऊर्मिल जीवन

कल नीरा सात बरसकी थी, आज वह सत्रह बरसकी है। दस बरसका समय एक लहरकी तरह उसे साथ बहा लाया। हवाने पानीके रूख बदल दिये, समयने जीवनके।

दस बरसमें कितना परिवर्तन हो गया। दस बरस पहले नन्हीं टाँगें जिन परिधियोंको लाँघ लेती थीं, आज उनके बाहर झाँकना भी उसके लिए सम्भव नहीं। पहले वह नासमझ बालिका थी आज समझदार नवयुवती है। जीवन यही है। व्यंग्य भी यही है।

उसकी चंचलता गम्भीरतामें बदल गयी है। उसकी मुखरताने खामोश रहना सीख लिया है। सोचने लगती है तो वर्तमानसे बहुत पीछे रह जाती है। वहाँसे लौटे तो बहुत आगे निकल जाती है। वर्तमानके केन्द्रपर विचारधारा भ्रान्त होकर घूमती है।

नीराने अपनेको देखा। शारीरिक विकास उसके और नन्ही नीराके अस्तित्वमें एक युगका अन्तर बतलाता है। तब चाहती थी जल्दी-जल्दी बड़ा होना। आज चाहती है पहलेकी तरह बालिका बन जाना। शैशवकी चाह पूरी हो चुकी है। आजकी चाह कभी पूरी नहीं होने की। वह यह सब समझती है, फिर भी विचार वशसे बाहर होकर चलते हैं।

नीरा कमरेमें टहलने लगी। उसे अनुभव हो रहा था कि सारा वातावरण ही विषैला हो गया है। एक-एक चीज़में तर्जना है। सजावटका सामान सूनेपनकी विडम्बनाको महत्त्व देता है। वह कमरेमें अकेली थी और अकेलापन धीरे-धीरे विश्वमय होता जा रहा था।

कल रातको उसका विवाह हुआ था। वह रात, जो जीवनकी मधुरतम कल्पना थी, एक विभीषिका बनकर छायी रही। सुहागरात आज होगी। इस समय संध्या है। संध्याके बाद तारे निकलेंगे। फिर रात आ जायगी।

उसे लगा जैसे जीवन-तत्त्व ही निःशेष हो रहा है । आजकी रात जीवनमें घातक कटुता घोल देगी । सम्भव हो, तो वह रातदिनके मनकोंसे बनी जीवन-मालाका यह काला मनका तोड़कर फेंक दे । मगर जानती है एक मनका तोड़नेसे माला ही टूट जायगी । उसमें इतना साहस नहीं है.....।

पलंग पर बैठकर नीराने चारों ओर देखा । दस बरसमें आँखें इस घरकी दीवारोंसे परिचित हो गयी हैं । रंग कई बार बदले गये । पलंगसे चादरें भी उतरती रहीं । उसकी आशा जीजी घरकी रानी थीं । एक महीना पहले जीजीने भी आँखें मूँद लीं और उनके स्थानपर आज वह स्वयं वहा आ गयी है ।

देह काँप उठी । दस बरस पहले एक अपरिचित व्यक्तिको जीजाके रूपमें देखा था । आजसे उसीको पतिके रूपमें पहचानना है और जीजाका वह प्यार-भरा सम्बोधन, "नीरो रानी !"

'नीरो रानी' का आजसे तात्पर्य बदल जायगा । नया अर्थ होगा और नयी ही व्याख्या होगी । उसके साथ-साथ.....

हृदय भारी होता गया । विवाह हो चुका । आगकी साक्षीमें वाग्दान करके माँने आँसू पोंछ लिये । घरका गाछ जला तो उसकी राखमें नया अंकुर रोप दिया गया । पानीके कुछ छींटोंमें राख सदाके लिए दब गयी ।

बाहर आकाश फैला है । शून्य ! शून्य पर अन्तर्वेदनाकी छाप नहीं पड़ती । शैशवके चित्र कहीं इस आकाशमें अंकित होते, तो उन पर काली तूलिकासे दाग़ कर देती ।

चररमरर बैलगाड़ी सड़क पर चल रही थी । नीराको बहुत पुरानी बात याद आयी । पिताने कभी कहा था, "जीवन एक बैलगाड़ी है । एक हिचकोलेसे इसके तख़्ते हिल जाते हैं । एक कील टूट जाय तो पहिये निकल जाते हैं ।" तब केवल सुना था । आज ठीक समझ रही है । पिताकी मृत्यु हुई । कील टूट गयी, पहिये निकल गये, गाड़ी बैठ गयी ।

नन्हीं कृष्णाने उसका दुपट्टा खींचा। नीरा एकदम सचेत हुई। पलभर कृष्णाकी भोली आँखोंको देखती रही। फिर गोदीमें लेकर उसका मुंह निहारा। उसके बालोंको सहलाया। फिर गोदीसे उतार दिया।

कलतक वह कृष्णाकी मौसी थी। आजसे उसकी सौतेली माँ है।

"मौछी," कृष्णाने कहा, "तू माँको लेकल क्यों नईं आयी ?"

नीरा मन-ही-मन रो दी। कृष्णा आज भी अपनी माँकी प्रतीक्षा करती है। क्या वह कभी उसे माँके रूपमें स्वीकार करेगी। 'नीरो रानी' का अर्थ बदल सकता है, पर कृष्णाका कोश बहुत छोटा है। वह अपने शब्दों का एक ही अर्थ जानती है। वह उसे कहती है, "मौछी"।

कृष्णाके लिए वह मौसी ही रहेगी। उसका शैशव जानता है--लहू और पानीका विवेक।

बच्चीके प्रश्नका उत्तर न देकर नीराने कहा, "जा उधर जाकर खेल मुन्नी ! मीरा वहाँ अकेली होगी।"

"नई, मौछी, पैले बता माँ कल बी आएगी कि नई ?"

नीराने उसे अपने साथ सटा लिया। स्वरको सहेजकर कहा, "तू मीराको जिसदिन नहीं मारेगी, उसीदिन आयगी, अच्छा ! जा, मीराके साथ खेल बाहर।"

कृष्णा सन्तुष्ट हो गयी। नीराके गलेमें बाँहें डालकर नाचने लगी। फिर उसे छोड़कर भाग गयी।

नीराने सामने देखा। आँखें दीवार पर लगे हुए चित्र पर अटक गयीं। क़साई मरी हुई बकरीको भून रहा है। हरी घासके पास बँधी हुई दूसरी बकरी घासमें मुँह मार रही है। क़साई देख रहा है। घासकी ओटमें वह छुरी है जिस पर अब भी लहूके दाग़ हैं।

नीराकी आँखोंके आगे श्मशानका वह दृश्य आया, जब आशा जीजीकी चितासे चिनगारियाँ निकली थीं। चिनगारियोंकी ओटमें कितना रोयी थी वह ? कितना सिसके थे वे--उसके जीजा ?

और महीनाभर बाद ?

वैसी ही आगके चारों ओर जीजाने उसके साथ फेरे लिये। उसे लगा जैसे बहनकी चिताके चारों ओर घूम रही है। चटकती हुई चिनगारियाँ और बोले जा रहे वेद-मंत्र—दोनों एक-से ही थे। विवाह हो गया। बिना सजधज और चहल-पहलके। समयके संकेतने उसे सौभाग्यवती बना दिया। लाल चूड़ियाँ और लाल सिन्दूर.....।

नीराने फिर देखा। छुरीपर लहू गीला-सा लगता था। क़साई, आग, बकरी और घास—यह एक परम्परा है। वह भी इसी परम्पराको निबाह रही है। उसने आँखें मूँदनेकी चेष्टा की। मनका भारीपन धीरे-धीरे पलकों पर फैल गया।

नन्ही-नन्ही नीरा। छोटा-सा घर। माता और पिता। असाधारण चहल-पहल। बाजे-बारात और जीजीका विवाह। किनारीदारी कपड़े पहनकर जीजी कैसे बदल गयीं ? मिठाइयाँ और बताशे। केलेके खम्भे, रोली और हवनकुण्ड। सेहरा बाँधे एक अपरिचित व्यक्ति। सहज आत्मीयता। माँने कहा, "नीरो, तेरे जीजा, जा जीजाके पास।"

जीजाने बाहें फैलायीं। कहा, "आ, नीरो रानी, तुझे खिलौना देंगे, मेले ले जायँगे।" नीरा पास नहीं गयी। दूर भाग गयी।

रोती हुई जीजी डोलीमें बैठीं। माँने कच्ची लस्सीमें पैर डाले। फिर जीजी लौट कर आयीं—गुड़िया, जैसे लाल ओंठ, और झाँकियोंकी सीता जैसे कपड़े। नीरा हँसी और तालियाँ पीटने लगी।

फिर वही अपरिचित व्यक्ति—जीजा। माँने कहा, "जा पूछ, दूध कब पिएँगे ?"

नीरा पास गयी, सिमटी और संकुचित-सी। जीजाने उसे दोनों बाहोंमें पकड़ लिया और पास खींचा।

दो मोटे-मोटे ओंठ, नाकके लम्बे बाल और विचित्र-सी गंध। नीरा हिचकिचायी, पीछे हटी और फिर उसने उस व्यक्तिके गालपर एक थप्पड़ लगा दिया....।

चौंककर नीराने आँखें खोलीं। वही शून्य आकाश! दूर-दूरतक कालिमामें ओझल होते हुए धरतीके चित्र। शैशव कहाँ है? पीछे, बहुत पीछे। बीचमें दस बरसकी दीवार है।

झींगुर बोलने लगे। अभी रात होनेवाली है। गोधूलिके गहरे पृष्ठ-पटपर एक तारा झिलमिलाने लगा।

नीराकी आँखसे दो आँसू टपक पड़े। उसने झटसे आँखें पोंछ लीं। यह कैसा अपशकुन है? आज तो सुहागरात है। पहले इसी कमरेमें जीजी की सुहागरात हुई थी। और वह साथका कमरा? उस कमरेमें जीजीके प्राण निकले थे। वहाँका वातावरण अब भी जैसे कराह रहा है। अव्यक्त और मद्धम-सा स्वर: "नीरा! ओ माँ! हाय! ओ माँ!"

विचारोंको उसने झटका दिया। उठकर फिर टहलने लगी। फूल-दानके फूल ठीक किये। सिंगार-मेज़के पास जाकर शीशेमें चेहरा देखा। बाहोंमें मांसलता है और गालों पर गुलाबीपन.....

जीजीके गाल पिचक गये थे। बाहें सूखकर कैसी हो गयी थीं—पतली हड्डियों जैसी? रूखेसे मुँहमे दाँत कैसे लगते थे? बड़ी-बड़ी आँखें कितनी डरावनी थीं! और वे उसे देखकर अन्तिम दिन भी कहती रहीं, 'नीरा, तेरा ब्याह तो देख लेती। बाबूजीकी तरह मैं भी तेरे ब्याहसे पहले ही...

नीराकी आत्मा चीख़ उठी, "देखो जीजी, देखो! तुम्हारी नीराका ब्याह हो गया! आज उसकी सुहागरात है! देखो—"

और उसपर शिथिलता छा गयी। निढाल-सी वह पलंगपर बैठ रही। फिर लेट गयी। छतकी कड़ियोंमें मकड़ीका जाला था। जाला धीरे-धीरे फैलने लगा। फैलकर इतना बड़ा हो गया कि नीरा उसमें उलझ गयी—बिल्कुल अक्सन्न और निश्चेष्ट.....

पृथ्वीकी धुँधली रेखाएँ आकाशकी कालिमामें खो गयीं। तारे निकल आये। रात हो गयी।

गरम साँसके स्पर्शने नीराकी पलकोंको खोल दिया। दो उत्सुक ओंठ उसके ओंठोंके बहुत निकट आ रहे थे। नीरा सहमी और सिमटने लगी। दो हाथोंने उसकी बाहोंको पकड़ लिया। बाहर अंधकार था। उसे मनमें लगा कि आकाशने भी आँखें मूँद ली हैं.....

दो मोटे-मोटे ओंठ, नाकके लम्बे बाल और विचित्र-सी गन्ध! निकट और निकट! आखोंके दो गहरे गड्ढे! नीरा हिचकियायी। चाहा बाहें झटक दें और ज़ोरसे तमाचा लगाये, जिससे सारा वातावरण झन्ना उठे...

मगर हाथ नही उठ सका। आज वह नासमझ बालिका नहीं, समझदार नवयुवती है।

एक पंख युक्त ट्रेजेडी

कई घरोंका वातावरण प्रेमके लिए बहुत अनुकूल होता है। प्रोफ़ेसर चोपड़ाका घर ऐसे ही घरोंमेंसे है। उन्हींके बरामदेमें बेंतकी कुर्सियों पर बैठकर चाय पीते हुए प्रगतिवादी सतिन्दरका प्रतिक्रियावादी प्रकाशकौरसे प्रेम हो गया था। दोनोंके विचारोंने एक दूसरेको इतना प्रभावित किया कि थोड़े ही दिनोंमें सतिन्दर प्रतिक्रियावादी हो गया और प्रकाशकौर प्रगतिवादी, जिससे दोनोंका विवाह नहीं हो सका। फिर उन्हींके ड्राइंगरूममें उनके जन्मदिन पर ज्ञानको एक साथ रूपा और रानीसे प्रेम हो गया। पर इससे पहले कि वह यह निश्चय कर सकता कि किससे प्रस्ताव करे, उन दोनोंका विवाह हो गया।

और अब के प्रेमकी घटना उनके घरके लॉनमें हुई। प्रोफ़ेसर चोपड़ा सबेरे सैरसे लौटते हुए कहींसे भूरे और नीले पंखों वाली एक सुन्दर-सी मुर्ग़ी लेते आये, और उसके आते ही प्रोफ़ेसर साहबके काले मुर्ग़ेको उससे प्रेम हो गया।

काला मुर्ग़ा ख़ानदानी मुर्ग़ा था। उसकी माँ प्रोफ़ेसर साहबके घर में कई बार अण्डों पर बैठी थी, और उन अण्डोंसे जिस परिवारकी स्थापना हुई, वह उस समय उसका एकमात्र अवशेष था। सबेरेकी बाँग देनेके समयसे वह प्रोफ़ेसर साहबके लॉनमें चहलक़दमी आरम्भ करता, और चींटे या मटर जो कुछ भी मिल जाता दिन भर निगलता रहता। उसका स्वास्थ्य असाधारण रूपसे अच्छा था और उसके पंखोंके नीचे, गरदनके चारों ओर तथा टाँगोंके ऊपरी भागमें मांसकी मोटी-मोटी तहें थीं। उसे अपने शरीर-की पुष्टताका अभिमान था, जिसके कारण वह बाहरके किसी मुर्ग़ेको प्रोफ़ेसर साहबके लॉनमें प्रवेश नहीं करने देता था। साथके घरका सफ़ेद

मुर्ग़ा तीन चार बार वहाँ मटर चुग़ने आ चुका था, पर हर बार ही काले मुर्ग़ेने उसे चोंच मार-मारकर भगा दिया था।

जब प्रोफ़ेसर साहब मुर्ग़ीको लेकर आये, तो पहले तो उनके हाथमें उस जीवको देखकर काले मुर्ग़ेका हृदय जलनसे भर गया और उसने ज़ोरसे पंख फड़फड़ा कर अपने रोषका परिचय दिया। पर जब प्रोफ़ेसर साहब मुर्ग़ीको बिल्कुल उसके निकट लाकर छोड़ गये तो सहसा उसकी एक टाँग ऊपर उठ गयी और कलग़ीदार गर्दन आह्लादसे हिलने लगी। पहले उसने एक बड़े घेरेमें मुर्ग़ीकी परिक्रमा ली। फिर दूसरी परिक्रमामें उसने घेरा पहलेसे छोटा कर दिया। तीसरी परिक्रमा उसने बहुत निकटसे ली। परिक्रमाकी समाप्ति पर जब उसने मुर्ग़ीकी ओर अपनी चोंच बढ़ाई तो मुर्ग़ी ने उपेक्षापूर्वक अपनी चोंच फिरा ली और उड़कर कई गज़ दूर चली गयी।

मुर्ग़ेको मुर्ग़ीकी यह अदा बहुत पसंद आई। वह पैरोंको एक केन्द्रम रखकर चारों दिशाओंमें गोल घूम गया। फिर उसने मटरका एक दाना मुँह में लिया और लयके साथ गर्दन हिलाता हुआ मुर्ग़ीकी ओर बढ़ा। मुर्ग़ीके निकट पहुँचकर जब उसने मटरका दाना उसकी ओर बढ़ाया तो मुर्ग़ीने फिर विपरीत दिशामें मुँह फेर लिया और अपनी निश्चित गतिसे उसी दिशामें चलने लगी।

अबकी बार मुर्ग़ीके इस व्यवहारसे मुर्ग़ेने अपनेको अपमानित अनुभव किया। उसका ख़ानदानी गर्वसे उठा हुआ सिर यह तौहीन सहन नहीं कर सका। उसने दो-तीन बार अपनी चोंच आधी खोली और बंद की। वह इस भावसे मुर्ग़ीकी ओर बढ़ा कि अब उसे अपने मोटे-मोटे पुट्ठोंके बलसे-पराजित करेगा। मुर्ग़ीको मनानेके लिए अब वह अपने वे चंचुप्रहार प्रयोग में लाने लगा, जिनसे वह आसपासके मुर्ग़ोंको भगाया करता था। उसका यह उद्दण्ड भाव काम कर गया और उसके दो प्रहारोंके अनन्तर ही मुर्ग़ी उसकी वशंवदा होकर उसकी चोंचसे चोंच भिड़ाने लगी।

काला मुर्ग़ा उस क्रीड़ामें अधिकाधिक प्रगल्भ होता जा रहा था, जब उस की पीठ पर किसी तीसरी चोंचका आघात पड़ा। वह सफ़ेद मुर्ग़ा जो कई बार उससे मार खाकर भागा था, आज उसे फिर चुनौती देने आया था। पर आज पहलेकी तरह उसकी आँखोंमें भीरुता-मिली धृष्टताका भाव नहीं था, बल्कि एक मिटने और मिटा देने वाली चमक थी। आज वह मटरके दानोंके लिए छेड़खानी करने नहीं आया था बल्कि अपने पौरुष और जीवन-का दाँव खेलने आया था।

अपने बढ़ते हुए उन्मादमें व्याघात पाकर काले मुर्ग़ेका लहू गर्म हो उठा। उसने झपट कर सफ़ेद मुर्ग़ेकी उठी हुई गर्दन पर प्रहार किया और एक ही आवेशमय आक्रमणमें उसे खदेड़ता हुआ लॉनके बाहर ले गया। लॉनकी परिधिसे बाहर निकलकर सफ़ेद मुर्ग़ेका आत्मविश्वास भी जाग उठा, और उसने दुगुने आवेशके साथ ऐसा प्रत्याक्रमण किया कि दोनों प्रोफ़ेसर चोपड़ा की कोठीसे दूर कच्ची सड़क पर पहुँच गये।

कच्ची सड़क पर आकर काले मुर्ग़ेने फिर से अपनी शक्तियोंका संचय किया। सफ़ेद मुर्ग़ेने भी पंख फड़फड़ाकर अपने को आने वाले घात-प्रतिघात के लिए तैयार कर लिया। अब दोनोंमें एक निर्णायक लड़ाई छिड़ गयी।

लगातार दो घण्टे तक लड़ाई चलती रही। कभी काला मुर्ग़ा एक टाँग पर उछलता हुआ अपने विपक्षीसे जा उलझता तो कभी सफ़ेद मुर्ग़ा गर्दन ऐंठता हुआ उसे नोंचने आ पहुँचता। बीच-बीचमें जब दोनों थक जाते थे तो आगे-पीछे एक घेरेमें घूमने लगते। फिर, जो भी जल्दी सँभल जाता वह अवसर देखकर दूसरे पर आक्रमण कर देता। दो घंटेकी लड़ाईमें उन दोनोंके पंख पूरे-पूरे झड़ गये। कलग़ियाँ साफ़ हो गयीं। गर्दनों से लहू फूटने लगा। फिर भी वे दोनों लड़ैत आपसमें भिड़ते ही रहे... लड़ते ही रहे।

दो घण्टे तक इस तरह लड़ चुकनेके बाद सफ़ेद मुर्ग़ा हल्का पड़ने लगा। उसने अपनी ओरसे जूझना बंद कर दिया और काले मुर्ग़ेके बढ़

आने पर केवल उसे रोकनेकी चेष्टामें ही रहने लगा। काले मुर्ग़ेने उसकी थकावटको भाँप लिया और एक बार बढ़ कर उसके शरीरको इस बुरी तरहसे छलनी कर दिया कि सफ़ेद मुर्ग़ा बिल्कुल निढाल हो गया। जब सफ़ेद मुर्ग़ेमें चोंच उठानेकी भी शक्ति नहीं रही, तो काला मुर्ग़ा उसे छोड़ कर वापस लौटा। उस समय उसकी अपनी अवस्था भी शोचनीय हो रही थी। पर उसके हृदयमें एक गर्वमिश्रित आह्लाद था। वह अपनी छिली हुई घायल गर्दनको अदाके साथ हिलाता हुआ चल रहा था तथा सिरको एक ऐसा कंप दे रहा था मानो उसकी लाल कलग़ी अभी तक सिर पर मौजूद हो।

लॉनके निकट पहुँचकर उसने बाहरसे ही बाँग दी....कुकड़ूँ-कूँ।

और उसने लॉनमें प्रवेश किया। प्रवेश करते ही उसने विजयगर्वके साथ चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा। मुर्ग़ी कहीं दिखाई नहीं दी। उसने बरामदेके पास पहुँचकर फिरसे इधर-उधर झाँका और पुनः बाँग लगायी—"कुकड़ूँ-कूँ!"

परन्तु मुर्ग़ी घरके किसी कोनेसे निकल कर नहीं आयी।

वास्तवमें मिस्टर चोपड़ाके घर लंचके लिए कुछ मेहमान आ गये थे और मुर्ग़ी उस समय खानेकी मेज़ पर मेहमानोंकी प्लेटोंको चिकना कर रही थी।

●

ज्ञानपीठके सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

दार्शनिक, आध्यात्मिक

१. भारतीय विचारधारा २)
२. अध्यात्म-पदावली ४॥)
३. वैदिक साहित्य ६)

कहानियाँ

४. संघर्षके बाद ३)
५. गहरे पानी पैठ २॥)
६. आकाशकेके तारे : धरतीके फूल २)
७. पहला कहानीकार २॥)
८. खेल-खिलौने २)
९. अतीतके कंपन ३)
१०. जिन खोजा तिन पाइयाँ २॥)
११. नये बादल २॥)
१२ कुछ मोती कुछ सीप २॥)

कविता

१३. वर्द्धमान [महाकव्य] ६)
१४. मिलन यामिनी ४)
१५. धूपके धान ३)
१६. मेरे बापू २॥)
१७. पंचप्रदीप २)

संस्मरण, रेखाचित्र

१८. हमारे आराध्य ३)
१९. संस्मरण ३)
२०. रेखा-चित्र ४)
२१. जैन जागरणके अग्रदूत ५)

उर्दू-शायरी

२२. शेरो-शायरी [द्वि. सं.] ८)
२३. शेरो-सुखन [पाँचों भाग] २०)

राजनीति

२४. एशिया का राजनीति ६)

ऐतिहासिक

२५. खण्डहरोंका वैभव ६)
२६. खोजकी पगडण्डियाँ ४)
२७. चौलुक्य कुमारपाल ४)
२८. कालिदासका भारत[१-२] ८)
२९. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन[भाग १,२] ५)

ज्योतिष

३०. भारतीय ज्योतिष ६)
३१. केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि ४)
३२ करलक्खण [द्वि०सं०] ॥॥)

नाटक

३३. रजतरश्मि २॥)
३४. रेडियो-नाट्य-शिल्प २॥)
३५. पचपनका फेर ३)
३६. और खाई बढ़ती गई २॥)

उपन्यास, सूक्तियाँ

३७. मुक्तिदूत ५)
३८. तीसरा नेत्र २॥)
३९. रक्तराग ३)
४०. ज्ञानगंगा [सूक्तियाँ] ६)

निबन्ध, आलोचना ६)

४१. ज़िन्दगी मुसकराई ४)
४२. संस्कृत साहित्यमें अयुर्वेद ३)
४३. शरत्के नारीपात्र ४॥)
४४. क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ? २॥)

विविध

४५. द्विवेदी-पत्रावली २॥)
४६. ध्वनि और संगीत ४)
४७. हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान १)